शैक्षणिक

संदर्भ

वर्ष: 15 अंक 84 (मूल क्रमांक 141)
जुलाई-अगस्त 2022 मूल्य: ₹ 50.00

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

प्रबन्धकीय सह-सम्पादक
पारुल सोनी

सहायक सम्पादक
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सहयोग
सुशील जोशी, उमा सुधीर
कोकिल चौधरी

आवरण
राकेश खत्री

वितरण: झनक राम साहू

सहयोग
अनमोल जैन, श्रेया,
कमलेश यादव

शैक्षणिक संदर्भ

वर्ष: 15 अंक 84 (मूल क्रमांक 141)
जुलाई-अगस्त 2022

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 4200944
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से इसलिए सदस्यता शुल्क में वृद्धि की जा रही है।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1200.00	8000.00

मुखपृष्ठ: प्राचीन डीएनए से प्राप्त कंकाल लक्षणों के आधार पर एक डेनिसोवन किशोरी का मायन हरेल द्वारा बनाया गया चित्र। विज्ञान की मदद से, हम हज़ारों वर्ष पहले की मनुष्य प्रजातियों के जीवाश्मों के डीएनए पढ़कर अपने प्रागैतिहास की समझ को गहरा कर सकते हैं। मानव विकास की लम्बी प्रक्रिया और मनुष्य प्रजाति के उद्गम की समझ को और पुख्ता करते हैं सम्बन्धित लेख में पृष्ठ 05 पर।

पिछला आवरण: मकड़ियों के एक समूह द्वारा पकड़ा गया शिकार। वैसे तो अधिकांश मकड़ियाँ अकेले रहती हैं और अपनी प्रजाति के अन्य सदस्यों के प्रति आक्रामक होती हैं, लेकिन कुछ मकड़ियाँ सामाजिकता के विभिन्न स्तरों का प्रदर्शन करती हैं जैसे समूहवासी, सामाजिक और बस्तीवासी मकड़ियाँ। इनके विभिन्न स्तरों के बारे में विस्तार से पढ़ते हैं लेख में, पृष्ठ 23 पर।

कवर 3: मानव प्रवास के इतिहास के अनुसार, यह माना जाता है कि प्रारम्भिक मानव प्रवास लगभग 20 लाख वर्ष पहले होमो इरेक्टस द्वारा अफ्रीका के शुरुआती विस्तार के साथ शुरू हुआ था। यह चित्र अफ्रीका से प्रवास लहरें और अफ्रीकी महाद्वीप में वापसी को, साथ ही, प्रमुख प्राचीन मानव अवशेषों और पुरातत्व स्थलों के स्थानों को दर्शाता है। पढ़िए सम्बन्धित लेख पृष्ठ 05 पर।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : Cover 1 - https://www.nature.com/articles/d41586-019-02820-0
Cover 3: https://en.wikipedia.org/wiki/Early_human_migrations#/media/File:Putative_migration_waves_out_of_Africa.png
Cover 4: https://www.flickr.com/photos/venkatmangudi/50176287453/sizes/l/

संदर्भ MAGZTER एप पर भी उपलब्ध है

असीमित डिजिटल रीडिंग का आनन्द लें!!!

MAGZTER

अभी सदस्यता लें और असीमित पढ़ने का आनन्द लें
iPad, iPhone और Android डिवाइस पर बिना किसी अतिरिक्त शुल्क के। साथ ही, इसकी वेबसाइट भी विज़िट कर सकते हैं

www.magzter.com

सदस्यता शुल्क: *एक साल – 170 रुपए*
प्रति अंक – 30 रुपए

इसे गूगल प्ले स्टोर या एप स्टोर से इंस्टॉल किया जा सकता है।

स्केन करें

मनुष्य की उत्पत्ति- भाग 1

एक मनुष्य होने के नाते हमारी अस्मिता क्या है? मनुष्य और मनुष्य-जैसी प्रजातियों के बीच क्या नाता रहा है? सबसे शुद्ध मनुष्य कौन हुआ, जब हम सभी के पूर्वज एक ही हैं? आज विज्ञान की मदद से, हम अपने और हज़ारों वर्ष पहले की मनुष्य प्रजातियों के जीवाश्मों के डीएनए पढ़कर न सिर्फ अपने प्रागैतिहास की समझ को गहरा कर रहे हैं, बल्कि ऐसे कई सबूत भी पा रहे हैं जो आज मनुष्यों के बीच नस्लीय गैर-बराबरी की दलील को खण्डित करते हैं। 2019 में *एकलव्य* द्वारा आयोजित एक सार्वजनिक व्याख्यान में ऐसे ही कुछ विषयों पर चर्चा हुई। उक्त लेख में आइए पढ़ते हैं, इस चर्चा के पहले भाग को और इस विषय में अपनी समझ को और पुख्ता बनाते हैं।

05

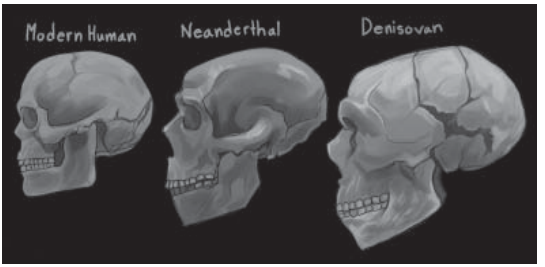

पृथ्वी की विगत जलवायु के बारे...

हमारी धरती एक अद्‌भुत कहानीकार है। हालाँकि, इसके पास अपनी जलवायु की कहानी बताने के लिए शब्द नहीं हैं, फिर भी पृथ्वी ने डायरियाँ रखी हैं। ये डायरियाँ हमें लाखों साल पहले की पृथ्वी पर जलवायु परिस्थितियों का लेखा-जोखा बताती हैं। इनका उपयोग करके, हमारे वैज्ञानिक ऐसे मॉडल बनाने में सक्षम हुए हैं, जो एक पोर्टल के रूप में कार्य करते हैं, और हमें अतीत को देखने और साथ ही, हमारे ग्रह के भविष्य की भविष्यवाणी करने में मदद करते हैं। आइए, हमारी पृथ्वी की डायरी के कुछ पन्नों पर एक नज़र डालते हैं, और जलवायु मॉडल के बारे में थोड़ा और जानते हैं।

50

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-84 (मूल अंक-141), जुलाई-अगस्त 2022

इस अंक में

04 | आपने लिखा

05 | मनुष्य की उत्पत्ति- भाग 1
सत्यजित रथ

21 | मकड़ियों का अद्‌भुत संसार: पुस्तक-चर्चा
किशोर पंवार

23 | समूहवासी, सामाजिक और बस्तीवासी मकड़ियाँ
विपुल कीर्ति शर्मा

31 | पानी की जाँच
कालू राम शर्मा

41 | सहजता को ढाँचे में बाँधना: सीखने में विरोधाभास?
राधा गोपालन

50 | पृथ्वी की विगत जलवायु के बारे में आप जो कुछ भी...
रेचल ई. ग्रोस्स

59 | पढ़ना सिखाने की गाड़ी एक ही पहिये पर चलाना
मीनू पालीवाल

69 | अभियान : टाइटन - भाग 1
सतीश बलराम अग्निहोत्री

84 | काँच कैसे बनता है?
सवालीराम

आपने लिखा

संदर्भ अंक-138 में देवी प्रसादजी का लेख 'कला शिक्षा की बुनियाद' में कुछ खास पंक्तियों का ज़िक्र किया गया है, वही सीखने-सिखाने की मूल कुंजी है। 'बच्चे की कला में सबसे सुन्दर उसकी गलतियाँ होती हैं, जितनी अधिक मात्रा में गलती होती है उतना ही आकर्षक उसका काम होता है'।

लेखक ने बच्चों के चित्रों का बारीकी-से अवलोकन किया है। बच्चों की प्रकृति के साथ मित्रता और जीवन की वास्तविक सुन्दरता को एक दिव्य दृष्टि से देखा और समझा गया है। वरना कुछेक लोग केवल कमियों की दृष्टि से देखकर चित्रों को नकार देते हैं और बच्चों के मनोबल को कमज़ोर कर देते हैं। कुछ करने का आनन्द ही बच्चों को सृजनात्मकता की ओर ले जाता है। काम न हो पाने का बोध उन्हें परेशान नहीं करता बल्कि समस्या या सवाल का हल कैसे निकाला जाए, इसकी ओर प्रेरित करता है। सफलता की भावना भी उनके लिए प्रोत्साहन का काम करती है। उनके चित्रों में क्या खास है, उस बारीकी को भी बच्चे जान पाते हैं। बच्चों के साथ पुस्तक लिखने की प्रक्रिया बहुत अच्छी व सराहनीय रही होगी। लिखने व सामग्री निर्माण की प्रक्रिया को लेखक ने बखूबी इस लेख में पेश किया है।

बच्चों में किसी कार्य को करने की हड़बड़ी नहीं दिखी। लेखक ने जिस तरह चित्रों के बारीक बिन्दुओं को पकड़कर विस्तार दिया है, एक नई सोच दी है, वह शिक्षकों के लिए प्रेरणादायक है। चित्रों के ज़रिए बच्चों के विचारों का आदान-प्रदान, नाटकीय पहलू, कल्पनाशीलता, आत्मप्रकटन, आक्रामक भावनाओं का निष्कासन – ये सभी पहलू शिक्षक को नयापन दे रहे हैं। लेखक द्वारा अवलोकन की गहराई व विस्तार बहुत ऊर्जावान और सीख देने वाला है।

माया मौर्य
मुस्कान संस्था,
भोपाल, म.प्र.

मनुष्य की उत्पत्ति

सत्यजित रथ

यह सार्वजनिक व्याख्यान *एकलव्य* द्वारा भोपाल में जुलाई 2019 में आयोजित तीन-दिवसीय कार्यशाला के दौरान दिया गया था।

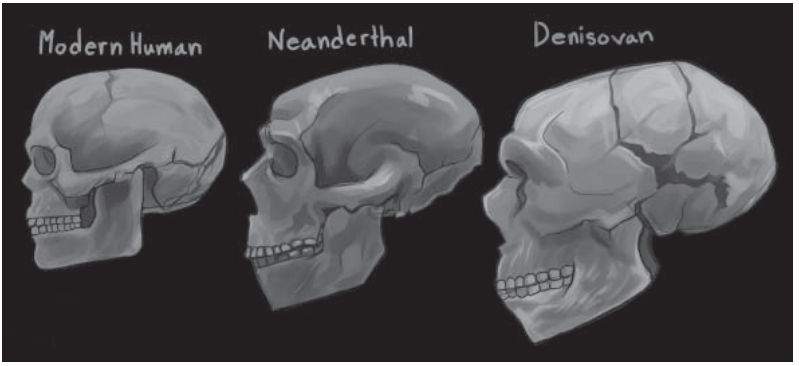

चित्र: ट्रॉय लॉरेक्स

विज्ञान और समाज के सम्बन्धों में एक जटिलता है। चालीस-एक साल पहले, जब हम-जैसे लोग इस मामले में पड़े थे और विज्ञान के आन्दोलनों के साथ जुड़ते थे, तब हमें लगता था कि विज्ञान और समाज का जो रिश्ता है, वह आगे अधिकाधिक सरल, स्पष्ट और विकसित होता जाएगा। लेकिन हालात कुछ और ही हैं। हालात ऐसे हैं कि किस हद तक वैज्ञानिक सोच को, वैज्ञानिक विचार को और वैज्ञानिकता को समाज अपनाता है, इसे अपने लिए, अपने विकास के लिए इस्तेमाल करता है, यह देखकर हम-जैसे पुराने लोगों को कभी-कभार निराशा-सी लगती है। तो यह सच हो-न-हो, पर इन हालातों में सोचने लायक बात यह है कि यदि विज्ञान और समाज को लेकर आम लोगों के सामने कुछ बातें रखें, तो किस तरीके की रखें और कैसे रखें।

समाज को एक बात की अधिकाधिक चिन्ता पिछली सदी में ज़्यादातर बढ़ती दिखाई दी और वह यह चिन्ता है कि हम कौन हैं। हमारी अस्मिता क्या है? हमारी पहचान क्या है? और 'हम' और 'दूसरे', इनमें किस तरीके का फर्क है? किस तरीके का फर्क हम कर सकते हैं ताकि हमारी अपनी एक बिलकुल अलग-सी पहचान बने?

मनुष्य प्रजाति मतलब क्या?

फिर याद आता है कि एक ज़माने में प्रजातियों की बात हुआ करती थी, मनुष्य जातियों की बात हुआ करती थी। यह कहा जाता था कि एक वाइट रेस है, एक ब्राउन रेस है, एक ब्लैक रेस है, एक येलो रेस है। और उसमें हम ऊँच-नीच का भेद कर सकते हैं। उसमें श्रेष्ठता-कनिष्ठता को देख सकते हैं।

अब इस तरीके से जब प्रजाति के बारे में सोचते हैं, तो ज़ाहिर है कि जीव-विज्ञान के दृष्टिकोण से प्रजाति की एक समझ है। जाति-प्रजाति मतलब क्या? जिसे जीव विज्ञान में स्पीशीज़ कहते हैं, वो कोई एक ऐसी चीज़ है जिसकी एक वैज्ञानिक पहचान है। इस वैज्ञानिक पहचान का और हम जो मनुष्य की अलग-अलग जातियों की बात करते आए हैं, उसका क्या नाता-रिश्ता है? इसे कैसे समझें?

जीव विज्ञान के दृष्टिकोण से हम यह समझते हैं कि अगर दो जीव एक ही प्रजाति के हैं, तो उनके संयोग से नई सन्तति निर्मित हो सकती है, जो अपने स्तर पर और नई सन्तति को जन्म दे सकती है। अँग्रेज़ी में कहें तो, 'Two individuals can give rise to a new generation that itself is fertile.' तो कहा जाता था कि इस दृष्टिकोण से सब मनुष्यों की प्रजाति एक है, क्योंकि ज़ाहिर है कि गोरे हों, काले हों, पीले हों, नीले हों, जो कुछ भी हों, सबके एक-दूसरे के साथ बच्चे पैदा होते हैं। फिर किसी ने कहा कि 'अरे भैया, ये तो ठीक है लेकिन घोड़ों और गधों के बीच में भी ऐसा संयोग हो सकता है, इसका मतलब यह नहीं है कि वे दोनों एक ही प्रजाति हैं।' तो इतनी व्याख्या से मनुष्य जाति की एकता और अनेकता के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता। फिर कैसे कहा जा सकता है? तो पुरातत्व विज्ञान (आर्कियोलॉजी) में एक दूसरा नज़रिया सामने आया। वह यह था कि हमारे पहले, मनुष्य जाति के पहले, कई हज़ार लाख वर्षों तक, मनुष्य जैसी प्रजातियाँ पृथ्वी पर मौजूद थीं। अब यह मनुष्य ही थे या मनुष्य जैसी अन्य प्रजातियाँ थीं? जब आर्कियोलॉजी या पेलेओंटोलॉजी (जीवाश्म विज्ञान) के दृष्टिकोण से देखा जाए तो उसमें परेशानी यह है कि हमें जब अवशेष मिलते हैं, तो उनमें से दो जीवों का संयोग होकर सन्तति निर्माण हो सकता है या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर तो मिल ही नहीं सकता।

जीवाश्म शास्त्र तथा पुरातत्व शास्त्र के अनुसार, हमने मनुष्य जैसी प्रजातियों (ह्यूमनॉइड स्पीशीज़) का एक विस्तृत खाका बनाया था कि 10 लाख वर्ष पहले, इस तरीके की प्रजातियाँ पृथ्वी पर दिखाई देती हैं, जो इतने लाख साल बाद विलुप्त हो जाती हैं। उनकी जगह अन्य प्रजातियाँ

दिखाई देती हैं, और उनकी जगह फिर अन्य प्रजातियाँ दिखाई देती हैं। इन सब में आम तौर से हड्डियों और दाँतों के सबूतों पर प्रजाति निर्धारण किया जाता है। इस वजह से हम इतना जान गए थे कि कई लाख साल पहले, पूरे भूतल पर जहाँ भी देखो, मनुष्य जैसी प्रजातियों के अवशेष मिलते हैं।

मनुष्य प्रजाति का उद्‌गम

अब हम यह मानकर चले हैं कि वे हमारे प्रजाति-पूर्वज हैं, सिर्फ पूर्वज नहीं, प्रजाति-पूर्वज। हमारी प्रजाति उन प्रजातियों से आई हुई है, यह हम मानकर चले हैं। लेकिन अगर ऐसा है, तो एक सवाल पैदा होता है कि पूर्व मनुष्य प्रजातियाँ (या मनुष्य जैसी प्रजातियाँ), पृथ्वी तल पर हर जगह जिनके अवशेष मिलते हैं, क्या उनसे मनुष्य प्रजाति का उद्‌गम पृथ्वी पर दस-पाँच अलग-अलग जगहों पर हुआ? अगर ऐसा है तो हम सचमुच अलग-अलग हैं। इसे मानवता का बहू-उद्‌गमी विकास कहते हैं (multicentric generation of humanity)।

मसले को सुलझाएँ कैसे? क्या सचमुच यह हुआ था? क्या हमारा प्रागैतिहास इस तरीके से बना है? कई सालों तक इस प्रश्न का सुस्पष्ट उत्तर हमारे पास नहीं था, बिलकुल ही नहीं था। इस मसले में ऊँच-नीच का एक मुद्‌दा आता है, कि 'हम यहाँ पहले से हैं, यह भूमि हमारी है'। क्यों हमारी है? क्योंकि हम यहाँ पर मनुष्य योनि में आकर पहुँचे हैं, बाहर से जो लोग आए हैं वे 'दूसरे' हैं, 'फॉरेनर' हैं, उनका यहाँ पर कोई काम नहीं है। अगर आएँ तो हमसे नीच बनकर, हमसे कनिष्ठ बनकर रहें। इस जैसे दृष्टिकोण के और भी कई आधार हैं लेकिन प्रमुख रूप से एक आधार यह है कि मनुष्य प्रजाति का निर्माण अलग-अलग जगहों में, अलग-अलग दिशा में हुआ।

पचास-एक साल पहले से यह साबित होने लगा कि इस प्रश्न से भिड़ने के लिए हमारे पास एक और रास्ता है। प्रश्न केवल अनुमान का नहीं है, प्रश्न यह है कि अनुमान सही है या गलत, यह कैसे परखें। तो अनुमान परखने के लिए कई अलग-अलग मार्ग अपनाए जा सकते हैं। पचास-एक साल पहले इसी तरीके का एक धुँधला-धुँधला-सा रास्ता हम देखने लगे, वह है जेनेटिक्स का रास्ता।

मैं सिर्फ यह नहीं कहना चाहता कि आज का जनन विज्ञान (जेनेटिक्स साइंस) मनुष्य जाति के उद्‌गम के बारे में क्या कहता है। मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि वह जो कुछ कहता है, कैसे कहता है और किस आधार पर कहता है। क्योंकि अगर हम सार्वजनिक चर्चा में सिर्फ फल की बात करें और प्रक्रिया की बात न करें, जिससे हम उस फल तक पहुँचे हैं, तो हम वैज्ञानिक समाज नहीं हैं।

तो जेनेटिक्स साइंस, यानी जनन विज्ञान, हमारी प्रजाति उद्‌गम के प्रश्न के उत्तर को ढूँढ़ने में मदद कैसे कर रहा है? जब हम प्रजनन की बात सोचते हैं – मनुष्यों को बच्चे होते हैं और ये बच्चे भी मनुष्य होते हैं। भ्रूण स्त्री-बीज और पुरुष-बीज के संयोग से, एक कोशिका से बनता है, तो इसका मतलब यह है कि भ्रूण में कोई प्रोग्राम है। और इस प्रोग्राम के ज़रिए उस कोशिका का विभाजन होता है, फिर और विभाजन होते-होते विभाजित कोशिकाओं में ऐसे परिवर्तन होने लगते हैं कि हाथ बनते हैं, पैर बनते हैं, मस्तिष्क बनता है, फेफड़े बनते हैं वगैरह-वगैरह। और ये सब मनुष्य संरचना में ढलते जाते हैं। तो यह प्रोग्राम माँ-बाप से बच्चे तक पहुँचा, पर कैसे? माँ से एक कोशिका आई और पिता से एक कोशिका आई। उन दो कोशिकाओं का संयोग होकर एक कोशिका बनी। तो उन दो कोशिकाओं ने, ज़ाहिर है, प्रोग्राम को एक-एक हिस्सा दे दिया। देखें तो यह भी सच है कि बच्चे माँ-बाप जैसे थोड़े-बहुत दिखते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि इस माँ-बाप में और उस माँ-बाप में जो थोड़े-थोड़े फर्क हैं, उनमें से कई फर्क अनुवांशिक हैं, मतलब कि वे फर्क जो बच्चे को मिल सकते हैं।

नकल और फर्क

हर माँ-बाप बच्चे को जो प्रोग्राम देते हैं, जो एक संरचना देते हैं, वह थोड़ी-सी अलग है। अगर माँ-बाप से बच्चे को समझना है, तो उसके बारे में थोड़ा और सोचते हैं। एक ज़माना था जब *एकलव्य* जैसे संगठनों में किताबें बहुमूल्य मानी जाती थीं, क्योंकि आसानी-से मिलती नहीं थी। एक किताब 10 लोगों के काम आनी है, तो एक किताब की बहुतेरी किताबें बनानी है, कैसे बनाएँ? तो फोटो-कॉपियर का प्रयोग हुआ करता था। उसके पहले क्या हुआ करता था? दादी-नानी की पोथी होती थी। रामचरितमानस की भोजपत्र पर हाथ-लिखी पोथी होती थी। लेकिन उसकी भी और प्रतियाँ कैसे बनती थीं? कोई पढ़कर लिखता था। पर क्या बिलकुल सही लिखता था? नहीं तो। उदाहरण के लिए 'ज्ञानेश्वरी' की पहली प्रति सच्चिदानन्द बाबा ने लिखी। अगर किसी को नकल चाहिए तो मान लीजिए कि दो लोगों ने पहली प्रति की नकल की। दोनों नकलों की अगर एक-दूसरे से तुलना करेंगे तो क्या बिलकुल वैसी-की-वैसी निकलेंगी? ना! इन्सान नकल कर रहा है, कहीं-न-कहीं तो फर्क पड़ना है। मैं 'भूल' भी नहीं कहूँगा, नकल में 'बदलाव' तो होना ही है। अच्छा, अब इन दो नकलों में से एक नकल लेकर कोई इधर गया, दूसरी नकल लेकर कोई दूसरे गाँव गया। वहाँ पर नकलों से नई नकलें होनी हैं, यानी कि कॉपियों से कॉपियाँ बननी हैं। तो ये

प्रतियाँ मूल प्रति से पहले ही अलग हो चुकी हैं, और जब उनसे और प्रतियाँ बनेंगी तो उनमें और बदलाव या फर्क आएँगे।

अगर आज के वक्त, ज्ञानेश्वरी की, रामचरितमानस की, या किसी अन्य पुरानी पुस्तक की 50 अलग-अलग कॉपियाँ इकट्ठी करें तो उन कॉपियों में भेद, अलगाव आप देख सकते हैं। कॉपियों की तुलना करने के काम को पाठ्य-भेद बताना कहते हैं।

तो मान लीजिए, एक मूल प्रति (चित्र-1) की दो नकलें की जाती हैं – नकल 1 और नकल 2. इन नकलों में मूल कॉपी के मुकाबले बदलाव या फर्क आ जाते हैं। नकल 1 में यह बदलाव 'L' में और नकल 2 में यह फर्क 'F' में आता है। अब इन कॉपियों से दो-दो और कॉपियाँ बनाई जाएँ (नकल 1.1, 1.2 और 2.1, 2.2) तो उनमें 'L' और 'F' के फर्क तो शायद जैसे-के-तैसे रहें, पर सम्भवतः और कहीं नए फर्क निर्माण हो गए हों (जैसे A, C, H, D)।

अब इन चारों नकलों (नकल 1.1, 1.2, 2.1, 2.2) के पाठ-भेदों की समझ तो बन गई, पर इन चारों में आपसी रिश्ता क्या है? तो हम यह कहते हैं कि नकल 1.1 और 1.2 आपस में ज़्यादा जुड़े हुए हैं और नकल 2.1 और 2.2 आपस में ज़्यादा जुड़े हुए हैं, और इन दोनों समूहों में फर्क है। ऐसा क्यों कह रहे हैं हम? इसलिए कि 'F' का फर्क हम 2.1 और 2.2 में पाते हैं पर 1.1 और 1.2 में नहीं पाते। ऐसे ही 'L' का फर्क 1.1 और 1.2 में पाते हैं पर 2.1 और 2.2 में नहीं पाते। लेकिन फर्क 'A', 'C', 'H' और 'D' सिर्फ एक-एक कॉपी में है। इसका मतलब है कि वे फर्क जो सबसे कम कॉपियों में हों, वे फर्क अभी-अभी निर्माण हुए

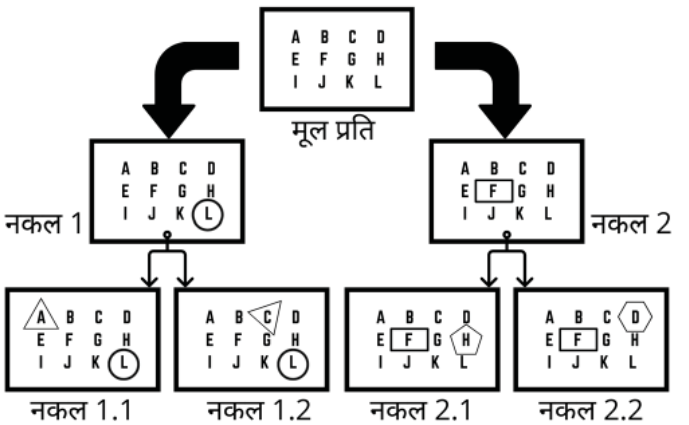

चित्र-1

हैं। पिछली कॉपी की प्रक्रिया में निर्मित हुए हैं। और जो फर्क कई प्रतियों में मिलने लगें, वे बहुत पहले निर्मित हुए हैं।

यदि मैं मौजूदा नकलें पढ़ूँ, तो फर्कों का वर्गीकरण कर सकता हूँ। तब यह कहा जा सकता है कि कुछ ऐसे फर्क हैं जो पूरी कॉपियों के समूह को दो गुटों में बाँटते हैं। फिर ऐसे फर्क हैं जो कई कॉपियों को 8-10 गुटों में बाँटते हैं। तो ज़ाहिर है कि जो फर्क सिर्फ दो गुटों में बाँटते हैं, वे बहुत पुराने फर्क हैं, और जो फर्क और ज़्यादा गुटों में बँटवारा करते हैं, वे और आधुनिक फर्क हैं। तो फर्क पढ़ने से मुझे समय का अन्दाज़ा लगने लगता है।

अच्छा, ये फर्क जब पड़ते हैं तो प्रजनन के दौरान पड़ते हैं। हम जानते हैं कि यदि मनुष्य शरीर के प्रोग्राम की, प्रजनन के दौरान कॉपी बनाएँ तो फर्क पड़ता है। यानी हर फर्क निर्मिती का समय हमें मालूम है, लेकिन कैसे? क्योंकि मनुष्यों को प्रजनन करने योग्य बनने के लिए कितने साल लगते हैं, यह हम जानते हैं – 15-20 साल तो लगते हैं, तभी जाकर प्रजनन होता है। इसका मतलब हुआ कि हमारी कॉपियों में जो फर्क आए हैं, वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी पड़ते आए हैं और पीढ़ी तकरीबन कितने सालों की है, हम जानते हैं।

यदि रामचरितमानस की हर 10 साल में नकलें बनाई गईं तो बताया जा सकता है कि पहली नकल कितने सौ साल पहले बनाई गई थी। सिर्फ आज की सारी कॉपियाँ पढ़कर, उनका विश्लेषण करके हम इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि कितने सौ साल पहले, रामचरितमानस की पहली नकल बनी। बिलकुल ऐसे ही, आपका-हमारा जो प्रोग्राम है, जो हमारी हर कोशिका के डीएनए में लिखा गया है, वह प्रोग्राम अगर हम पूरा पढ़ पाएँ तो क्या उससे अन्दाज़ा बन सकता है कि हम में से कौन एक पूर्वज से हैं और हम में से कौन बिलकुल अलग-अलग पूर्वजों से हैं?

अगर हम यह कहें कि मेरा और आपका पूरा प्रोग्राम आप पढ़ो, तो यह उन नकलों को पढ़ने जैसा होगा। अगर चन्द लोगों के प्रोग्राम पढ़ने लगें, तो हम वर्गीकरण करने लगेंगे। और चूँकि हम पीढ़ी की अवधि जानते हैं तो हम कह सकते हैं कि आपके और हमारे प्रोग्राम में जो फर्क हैं, वे कब और कितने हज़ार वर्ष पहले निर्मित हुए। तो इसका मतलब यह हुआ कि इतने हज़ार वर्ष पहले हमारे पूर्वज एक थे।

अब यह जो प्रोग्राम है जिसमें हम फर्क ढूँढ़ रहे हैं, क्या हम इस पूरे प्रोग्राम को पढ़ सकते हैं? तो बीसवीं सदी में भी हम इसे पूरा नहीं पढ़ पा रहे हैं।

डीएनए अनुक्रम की समझ

तो एक डीएनए को लेकर उसकी

पूरी प्रणाली पढ़ें, उसका पूरा अनुक्रम पढ़ें, और चूँकि हमारे अनुक्रम में ये छोटे-छोटे फर्क आए हुए हैं तो अनुक्रम को एक-दूसरे से जोड़कर देखने पर सारे फर्क सामने आ जाएँगे। हज़ार लोगों के अनुक्रम देखने पर हम वर्गीकरण करने के काबिल हो जाएँगे। पिछले 20 सालों से यह काम लगातार चलता आया है, और इसके कई नतीजे बड़े रोचक और उद्‌बोधक हैं। विशेष तौर पर इस प्रश्न के उत्तर में कि मनुष्य जाति आई कहाँ से।

पर नतीजों से पहले, एक और बात पर ध्यान देना ज़रूरी है कि वैज्ञानिक हमें जो बताते हैं, वह क्यों कहते हैं, किस आधार पर कहते हैं, यह समझना उतना ही ज़रूरी है जितना 'क्या कहते हैं' समझना ज़रूरी है। मैंने आसानी-से कह दिया कि मेरा खून ले लो, उसमें डीएनए है, डीएनए का अनुक्रम तय करो। पर डीएनए का अनुक्रम भला कैसे तय किया जाता है? इसके लिए एक प्रतीकात्मक उदाहरण देता हूँ।

मैंने ज्ञानेश्वरी या रामचरितमानस की नकलों की बात की। यदि पूरी नकल है हाथ में, तो पढ़ते जाओ। एक पन्ना पढ़ो, फिर अगला, फिर अगला और फिर अगला पढ़ो। इस तरीके से डीएनए का अनुक्रम तय करने की प्रणाली आज भी हमारे पास नहीं है। तो फिर क्या है? हम डीएनए के अनुक्रम इस तरीके से तय करते हैं - एक दूसरे उदाहरण में, सन्त तुकाराम ने अपनी अभंगावली लिखी थी। लोगों ने बहुत कोसा, परेशान किया तो उन्होंने उद्विग्न होकर अभंग नदी में डुबा दिए। फिर भगवान ने किसी तरीके से अभंग बाहर निकालकर दोबारा हाथ में दे दिए। लेकिन है तो कागज़, डूब गया, और क्षण भर के लिए मान लीजिए कि सन्त महोदय ने बॉल पेन से लिखा था। कागज़ तो बिलकुल गल जाना चाहिए। फिर सारे कागज़ इकट्‌ठे किए पर उसमें से कुछ फटे, कुछ के चिथड़े हुए, कुछ के टुकड़े हुए और सारे बड़े भक्ति भाव से इकट्‌ठे करके सुखाए, अब अभंगावली पढ़कर दिखाइए।

डीएनए सीक्वेंसिंग (अनुक्रम तय करना) भी ऐसी अड़चनों के साथ होता है। तो कैसे करें? एक टुकड़ा पढ़ें, फिर दूसरा, तीसरा पढ़ें। कौन-सा टुकड़ा किस टुकड़े के साथ आगे या पीछे जाता है, कैसे तय करें? डीएनए अनुक्रम तय करने के लिए इसमें थोड़ी-सी सहूलियत मिलती है, वह क्या है? वह यह है कि हम जब खून लेते हैं और उसमें से डीएनए निकालते हैं तो एक कोशिका में से डीएनए नहीं निकलता, कई लाख कोशिकाओं में से डीएनए निकलता है। इसका मतलब है कि हमने अभंगावली की एक कॉपी नहीं डुबाई, एक लाख फोटोकॉपियाँ डुबाईं। क्योंकि हमारे खून में डीएनए के जो

अनुक्रम हैं, वे एक-दूसरे से तकरीबन मिलते-जुलते हैं। तो एक लाख फोटोकॉपियाँ हमने डुबाई हैं, उसके सारे चिथड़े निकाले हैं। अब होता है कि आप एक टुकड़ा पढ़ लो, फिर पूरे चिथड़ों में से उससे मिलने वाला दूसरा टुकड़ा ढूँढ़ो। वह बिलकुल उसी आकार का नहीं होगा। चिथड़े हैं, बिलकुल उसी आकार के थोड़े होने हैं। तो वह थोड़ा-सा मिलता होगा लेकिन उसका पहले का थोड़ा हिस्सा होगा, बाद का थोड़ा हिस्सा होगा, आप कहोगे, "अरे!" और इस तरीके से आप पूरी अभंगावली दोबारा पढ़ लोगे। इसके लिए जो संगणकीय विज्ञान लगता है, अगर वह न होता तो यह काम नहीं होता।

एक तो रसायन विज्ञान में जो प्रगति हुई है उसकी ज़रूरत थी, दूसरी संगणक विज्ञान (informatics) जिसे सूचना विज्ञान या सूचना प्रणाली विज्ञान भी कहते हैं, उसमें जो नए-नए शोध विचार हुए हैं, उनके आधार पर हम यहाँ तक पहुँचे हैं कि कुछ हद तक हम डीएनए के अनुक्रम पढ़ पाए हैं। क्या आज पूरा पढ़ पाते हैं? जवाब है, 'हाँ' लेकिन बड़ा महँगा पड़ता है पूरा पढ़ना। तकरीबन पढ़ना थोड़ा कम महँगा होता है। यह भी महत्वपूर्ण है क्योंकि पैसे का भी मसला है कि कितने पैसे जुटाओगे इस काम में। हमने आज तक जो सीखा है, वह तकरीबन पढ़कर सीखा है। यह याद रखना चाहिए क्योंकि

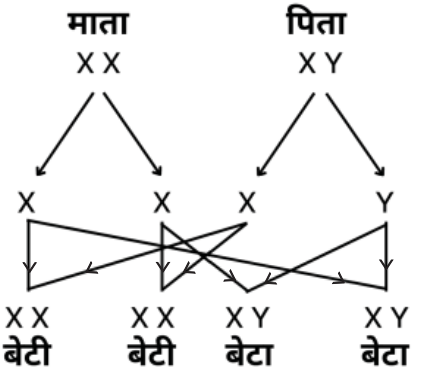

चित्र-2: माता-पिता से मिले क्रोमोसोम के आधार पर लिंग निर्धारण दर्शाता रेखाचित्र।

और बारीकी-से पढ़ें तो और नए मुद्दे सामने आ सकते हैं।

स्त्री पूर्वज और पुरुष पूर्वज

तो यह पढ़ने के बाद तीन मुद्दे आए सामने – पहला ठोस मुद्दा यह कि हम सबकी एक स्त्री पूर्वज है और एक पुरुष पूर्वज। अब स्त्री-पुरुष कैसे जानें? यह आसान है। पर आसान क्यों है? आसान इसलिए है कि सबको पता है कि पुरुष और स्त्री में क्रोमोसोम्स का फर्क होता है। स्त्री में दो X क्रोमोसोम होते हैं, पुरुषों में एक X क्रोमोसोम और एक Y क्रोमोसोम होता है। इसका मतलब Y क्रोमोसोम सिर्फ बाप से बेटे को जाता है। बाप से बेटी को नहीं जाता, माँ से बेटे को नहीं जाता, न माँ से बेटी को जाता है। सिर्फ बाप-बेटे का अनुवांशिक रिश्ता है, Y क्रोमोसोम। अगर हम Y

क्रोमोसोम का अनुक्रम तय कर पाएँ और उसके फर्क पढ़ पाएँ, तो इस सवाल का उत्तर मिल सकता है कि क्या हम सब पुरुषों का पुरुष पूर्वज एक है या अनेक हैं। और उसका उत्तर यह है कि 'एक है'।

अगला प्रश्न है – स्त्रियों के बारे में क्या? तो इसके लिए थोड़ी और वैज्ञानिक जानकारी ज़रूरी है। डीएनए कोशिका के केन्द्रक में है। पुरुष कोशिका का केन्द्रक स्त्री कोशिका में आकर संयोग करता है जिससे भ्रूण कोशिका का केन्द्रक बनता है। लेकिन इस केन्द्रक के बाहर कोशिका में, कोशिका के कई सारे पुर्ज़े हैं, और उनमें एक अलग-सा डीएनए है। ऐसा क्यों है, इसकी एक अलग ही कहानी है। असल में, वह इससे भी ज़्यादा रोचक कहानी है। खैर, तो केन्द्रक के बाहर का जो डीएनए है, 'एक्स्ट्रा न्यूक्लीयर डीएनए' वो भ्रूण में सिर्फ माँ की ओर से आता है, क्योंकि पुरुष कोशिका का एक्स्ट्रा न्यूक्लीयर डीएनए भ्रूण में आता ही नहीं है। यह आम तौर से माइटोकॉण्ड्रिया में होता है इसलिए इसे माइटोकॉण्ड्रियल डीएनए कहते हैं। लेकिन तत्व यह है कि हमारी हर कोशिका के केन्द्रक में, यानी कि न्यूक्लियस में डीएनए है, लेकिन केन्द्रक के बाहर भी डीएनए है। और हम चाहे पुरुष हों या स्त्री हों, हमारे केन्द्रक के बाहर का जो डीएनए है, वह माँ से आता है। तो इसका मतलब यह है कि हमारी माँ के पक्ष की वंशावली हम पढ़ सकते हैं, उस डीएनए का अनुक्रम पढ़कर। तो इससे ज़ाहिर होता है कि हम सबका एक पुरुष पूर्वज है और एक स्त्री पूर्वज।

अफ्रीका से प्रवास

अच्छा ठीक है, पहले प्रश्न का उत्तर हमें मिल गया। वह प्रश्न क्या था? कि मनुष्य प्रजाति का उद्गम स्वतंत्र स्रोतों से दुनिया में अलग-अलग जगहों में हुआ है या नहीं? जवाब है, 'नहीं'। इस जवाब को चन्द मिनट बाद हम थोड़ा पलटने जा रहे हैं, लेकिन अभी के लिए समझिएगा कि जवाब आम तौर पर है – 'नहीं'। एक उद्गम है हमारा। लेकिन एक नदी के बारे में सिर्फ इतना कहकर समाधान नहीं होता कि एक उद्गम है। अरे भैया, एक उद्गम है, लेकिन कहाँ है? बड़ा अच्छा लगता अगर भरतखण्ड में होता, है न? तो कैसे मालूम करें? यह जो कॉपियों का वैविध्य है, इसे दुनिया के नक्शे पर लगाने लगें तो ज़ाहिर होने लगता है कि किसके, किसके साथ कितने करीबी रिश्ते हैं। और यह मालूम पड़ता है, जब इस तरीके से विश्लेषण किया जाता है, कि हम सबका मूल अफ्रीका में है। न यूरोप में, न न्यूयॉर्क, शिकागो, वाशिंगटन में, न चीन में और न ही भरतखण्ड की पुण्य भूमि में। अफ्रीका में है। और इस शोध के

ज़रिए एक बिलकुल नया और रोचक शोध हमारे सामने आ खड़ा होता है। एक बिलकुल नई सम्भावना हमारे सामने आकर खड़ी होती है। वह यह है कि अच्छा, हम सबके पूर्वज अफ्रीका में रहे? तो मनुष्य जाति अफ्रीका से कब निकली? कैसे निकली? किस दिशा में निकली? कितने साल बाद कहाँ पहुँची? कैसे समझें इसे? इस विश्लेषण को लेकर हम उस प्रवास के बारे में अनुमान लगा सकते हैं। ध्यान में रखिएगा कि ये अनुमान हैं। थोड़े-बहुत बदल भी सकते हैं, लेकिन फिर भी बड़े अद्‌भुत हैं।

इन अनुमानों से अभी तक तो हम यह समझते हैं कि तकरीबन एक लाख साल पहले... वैसे ये आँकड़े जो हैं, इनमें 20-30 फीसदी इधर-उधर हो सकता है... तो तकरीबन एक लाख साल पहले हम अफ्रीका से निकले। निकले का मतलब सिर्फ इतना है कि तकरीबन 80 हज़ार साल पहले अफ्रीका के बाहर पश्चिमी एशिया में, जिसे आज यूरोपीय, अमरीकी लोग मध्य-पूर्व कहते हैं – हमें नहीं कहना चाहिए क्योंकि हमारे लिए वह मध्यपूर्व नहीं है – पश्चिमी एशिया में पहुँचे। हम अफ्रीका में फैल रहे थे। ज़ाहिर है, फैलते-फैलते अफ्रीका खण्ड से बाहर, पश्चिमी एशिया तक हम आ पहुँचे। और पश्चिमी एशिया से हमने दो-तीन मार्ग लिए। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे हमारा प्रसार अरबी सागर के किनारे-किनारे, पश्चिमी एशिया से ईरान तक, ईरान से दक्षिणी एशिया तक, मतलब यहाँ तक हुआ।

तकरीबन 60 हज़ार साल पहले की बात है। इतना समय लगता है

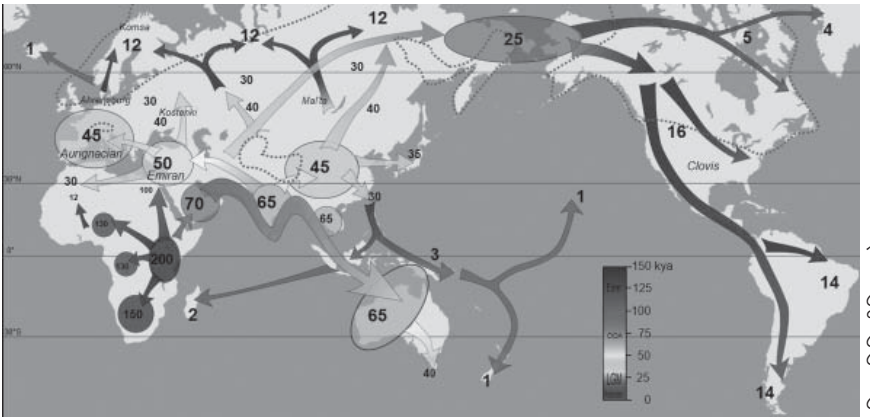

चित्र विकिपीडिया से साभार।

चित्र-3: *मनुष्य प्रजाति का दुनियाभर में हुआ फैलाव दर्शाता चित्र (1 kya = 1000 वर्ष)*

क्योंकि कोई अश्वमेध यज्ञ करने के लिए नहीं निकला था... अरे भैया, गाँव था, चार लोग अपना उदर निर्वाह करते थे। बच्चे हुए, बच्चे दस मील दूर जाकर वहाँ बसे, फिर उनके बच्चे 10 मील दूर जाकर कहीं और बसे, यूँ हम प्रसारित होते गए। हमारा समाज फैलता गया। चढ़ाई नहीं की समाज ने, रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में हम फैले। तो यूँ फैलते-फैलते 60 हज़ार साल पहले हम इस भूखण्ड में, दक्षिण एशिया में, आकर पहुँचे। यहाँ नहीं रुके, लोग जो कुछ समझें तो समझें, यहाँ कोई बहुत खास बात नहीं है। हममें से कुछ आगे चलते गए। आगे चलते-चलते, किनारे-किनारे पूर्व एशिया में गए, चीन तक गए, ऊपर बिलकुल पूर्वी रशिया का आर्कटिक महासागर के पास जो हिस्सा है, वहाँ तक जाकर पहुँचे। हम जैसे-जैसे समुद्रों के किनारे पहुँचे, वैसे ही हम द्वीपों पर जाने लगे। इंडोनेशिया, फिलीपींस के द्वीपों तक हम फैलने लगे। यहाँ तक कि पापुआ न्यू गिनी तक जाकर हमने एक बड़ी छलांग मारी, 400 किलोमीटर की और ऑस्ट्रेलिया की भूमि पर पहुँचे। अब कोई कहता है 70 हज़ार, कोई 60 हज़ार या 50 हज़ार, पर वो कोई बड़ी बात नहीं है। वहाँ तक जा पहुँचे। लेकिन जहाँ-जहाँ पहुँचे, छोटी-छोटी तादाद में ही पहुँचे। ये कोई बड़े-बड़े शहर नहीं थे। बल्कि चन्द लोगों के छोटे-छोटे समूह थे।

...ये तो एक तरह से ऐसे जानवर थे जो अपना संरक्षण बहुत अच्छे तरीके से नहीं कर पाते थे। तो बच्चे जन्म लेते ही मर जाते, लोग मरते इस-उस कारण। इसलिए कई बार आए और विलुप्त हो गए। किसी जगह पर पहुँचे और फिर सारे मर गए। यह तो होता रहा होगा। तो ऐसा नहीं है कि हमने ऑस्ट्रेलिया तक जाने का एक रास्ता बना लिया और बस, यहाँ दक्षिण एशिया में सोचा कि ऑस्ट्रेलिया तक जाएँ, तो एक एयर इंडिया की फ्लाइट ली और चले गए। अलग-अलग गुट, अलग-अलग जगहों पर इस-न-उस तरीके से पहुँचे। बड़े आश्चर्य की बात यह है कि किसी-न-किसी तरीके से कोई-न-कोई समूह जो जा पहुँचा, वो आज तक ज़िन्दा रहा। उससे मनुष्यता के बारे में बहुत कुछ सीखने लायक मिला। तो पश्चिम एशिया से निकले, एक तो अरबी समुद्र के किनारे-किनारे आए, दूसरे ईरान से मध्य एशिया की ओर चले गए, तीसरे पश्चिम एशिया से आज के तुर्किस्तान होकर यूरोप की ओर चले गए।

कोई मिल गया!

अब जो लोग यूरोप या मध्य एशिया की ओर चले गए, उन्हें कुछ अजीबो-गरीब मिला। क्या मिला? यह मिला... अभी तक हम समझे हैं कि हम सब बड़े शुद्ध अफ्रीकी हैं। अभी तक जो कहानी बताई आपको, उससे

हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि हम बड़े शुद्ध अफ्रीकी हैं। हमारी एक स्त्री पूर्वज थी, हमारा एक पुरुष पूर्वज था और हम सभी उनकी सन्तान हैं। हैं? ना! ना क्यों? ना इसलिए कि हम में से जो लोग यूरोप की ओर गए, उन्होंने देखा कि यहाँ तो पहले से दूसरे लोग हैं भैया! वह लोग कौन हैं, यह समझने के लिए हमें और पीछे वापस अफ्रीका में जाना पड़ेगा। साधारणत: यह लगता है, अनुमान स्वरूप, कि सारी मनुष्य जैसी प्रजातियों का मूल अफ्रीका में हुआ। और ये सारी मनुष्य-जैसी प्रजातियों, मनुष्य नहीं, मनुष्य-जैसी प्रजातियों का उद्गम अफ्रीका में पाया गया और फिर वे दुनिया भर में फैलती गईं। और यह सिलसिला पिछले एक लाख सालों से नहीं, 10-20 लाख सालों से चलता आया है। तो अफ्रीका से एक के बाद एक कई प्रजातियाँ रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में बाहर आती गईं, फैलती गईं, विलुप्त भी होती गईं। हमसे दो लाख साल पहले, अफ्रीका से एक मनुष्य जैसी प्रजाति बाहर निकली। 40-50 हज़ार साल पहले, जब हम यूरोप में पहुँचे, तो उनके जो वंशज हैं, उनसे दोबारा मुलाकात हुई। आप समझ लीजिएगा कि हम में और उनमें दो-एक लाख साल की दरार है, और मेरे लिए अब भी अति आश्चर्य की बात यह है कि मिले तो मिले, बच्चे भी पैदा किए हमने। दो लाख साल की दरार लांघ कर हमने उनके साथ बच्चे पैदा किए। हम होमो-सेपियंस हैं और वह प्रजाति है, होमो-निएंडरथल्स। अब तक हम कहते आए हैं कि जब दो प्रजातियाँ अलग-अलग होती हैं तो उनमें संकरित सन्तति प्रजनन-योग्य नहीं होती।

डीएनए की शुद्धता?

यह जो सीक्वेंसिंग का, यानी कि अनुक्रम तय करने का मसला है, इसने हमारी पुरानी समझ को झूठ ठहराया। लेकिन अब एक छोटा तकनीकी सवाल पूछते हैं कि सीक्वेंसिंग में हमने यह कैसे जाना, कॉपियाँ पढ़ने में यह कैसे जाना कि निएंडरथल की कॉपियाँ इसमें घुसी हैं। यह जानने के लिए हमें निएंडरथल की कॉपी चाहिए। अगर वो पढ़ी होती, तब जाकर तुलना में हम यह कह सकते थे कि निएंडरथल के जो अनुक्रम हैं, वे हमारे अनुक्रम में भी मौजूद हैं। वे हमारी प्रणालियों में मौजूद हैं। तो इसके लिए अगर निएंडरथल डीएनए नहीं मिलता तो यह बात नज़रअन्दाज़ ही हो जाती, कभी सामने नहीं आती। निएंडरथल डीएनए कहाँ से मिला? अब यूरोप, रशिया वगैरह का फायदा यह है कि ये जगहें बड़ी ठण्डी हैं। तो फायदा यह है कि मृत अवशेषों में जो जैविक सामान है, डीएनए है, वह बिलकुल खराब होकर तितर-बितर नहीं हो जाता, जैसा कि उष्णकटिबन्ध के

इलाकों में होता है, ठण्डे इलाकों में यह नहीं होता। यह नहीं कह रहा हूँ कि बिलकुल नहीं होता, आम तौर से होता है लेकिन कुछ-न-कुछ तो मिल जाता है। तो निएंडरथल गुफा से जो कई हड्डियों के अवशेष मिले, उसमें से चन्द हड्डियों में से इतना डीएनए निकला कि निएंडरथल डीएनए का अनुक्रम पढ़ पाए। चूँकि वह अनुक्रम हमारे पास है इसलिए हम जान गए कि भैया, तुम जब यूरोप पहुँचे न, मतलब तुम्हारी पर-पर-पर-पर-पर-पर-पर-पर नानी जब पहुँचीं न, तो उन्हें एक निएंडरथल बॉयफ्रेंड मिला था। यह एक-दो बार की बात नहीं है क्योंकि अगर यह एक-आध बार हुआ होता तो निएंडरथल डीएनए हमारे डीएनए में आज इतनी मात्रा में मौजूद न होता। यह कई बार हुआ होगा। सम्भावना है कि यह आम बात है।

अच्छा आप कहो कि एक ही बार तो हुआ, बाकी तो हम शुद्ध हैं न? ना! कैसे? तो यह यूरोप की ओर गई पर-पर-पर-पर-पर-पर-पर-पर नानी की कहानी है। उनका एक भाई था जिसने कहा, "मैनु यूरोप में नी जाणा, मैं इधर जा रिया हूँ मध्य एशिया की ओर। वहाँ से पूर्व एशिया तक चला जाऊँगा।" और वहाँ 5 लाख साल पहले अफ्रीका से निकली हुई प्रजाति के वंशज मिले, जिन्हें हम आज डेनीसोवन कहते हैं, होमो

चित्र-4: *इज़राइल में मिले निएंडरथल के जीवाश्म।*

डेनीसोवेंसिस। डेनीसोवन और निएंडरथल क्यों कहते हैं? क्योंकि निएंडरथल के जो हड्डियों के अवशेष मिले, वो निएंडरथल में मिले यानी कि निएंडर गुफा में मिले। वैसे ही डेनीसोवन इसलिए कहते हैं कि डेनिसोवा की गुफा में मिले, रशिया में। फिर वही बात! नए लोग मिले हैं, अलग दिखते हैं तो आकर्षण तो अलगाव का होता ही है, तो इस वजह से डेनीसोवन डीएनए हममें मौजूद है। हममें से कइयों में थोड़ी मात्रा में मौजूद है। जो इंडोनेशिया, फिलीपींस, पापुआ न्यू गिनी की ओर रहते हैं, ऐसे लोगों में डेनिसोवन डीएनए कभी-कभार तो 10 फीसदी तक मौजूद होता है। उसी तरीके से हम में आधे-एक फीसदी से चार-पाँच फीसदी तक मौजूद है। काफी है और हम सब में है।

अब मैं आपसे सवाल करता हूँ, आप मुझे बताइएगा कि मनुष्य जाति के किस हिस्से में न निएंडरथल डीएनए है, न डेनिसोवन डीएनए है? सबसे 'शुद्ध' मनुष्य कौन हैं? कहाँ के हैं?

उत्तर - अफ्रीका के हैं।

अफ्रीका के हैं। जो हमारे चचेरे-मौसेरे भाई-बहनें, हमारे साथ अफ्रीका से निकले ही नहीं, वहीं पर रहे, तो यह योग नहीं आया। बिलकुल, बिलकुल शुद्ध हैं वे। तो अगर कोई कहना चाहता है कि हम अपनी विरासत की वजह से किसी भी तरीके से शुद्ध हैं, तो सिर्फ मूर्खता नहीं है, भूल भी है। सिर्फ यही नहीं, हमारे पास जो डेनिसोवन या निएंडरथल डीएनए बतौर विरासत आया है, उससे हमें कई फायदे हुए हैं। हमारे कई जनक, हमारे कई जींस, जो बहुत काम आते हैं - प्रतिरक्षा प्रणाली के लिए, प्रतिकार शक्ति के लिए जो कई जींस ज़रूरी हैं, उनमें से चन्द सारे हम अपनी निएंडरथल विरासत से लिए हुए हैं। हमारे जो भाई-बहनें द्वीपों में रहते हैं, एशियाई-पूर्व-एशियाई द्वीपों में, उन्होंने इसी तरीके से कई जींस अपनी डेनिसोवन विरासत से लिए हैं। तो यह जो वैविध्य है, यह हमारे काम आया हुआ है। हम इस वैविध्य को सिर्फ सहन नहीं करते, वह हमारे लिए बड़ी अहमियत रखता है।

मनुष्यों का फैलाव और खेती

अभी तक जो बात की है, इस सोच से की है कि हम मनुष्य इस जंगल में रहते थे, हमारे बच्चे जंगल के उस भाग में रहने को गए। क्यों गए? वहाँ कोई रहता नहीं था, सोचा यहाँ थोड़ी भीड़ हो रही है। 'थोड़ी भीड़ हो रही है' का मतलब क्या है? दिन में जो औसतन दो ही लोग दिखा करते थे, आजकल दिन में 5 लोग दिखाई देते हैं यार, बड़ी भीड़ हो गई। तो यह सोचकर हम जंगल के किसी अन्य हिस्से में चले गए, और यूँ हम फैले। इसका मतलब यह

है कि हम जहाँ गए वहाँ, एकाध निएंडरथल या डेनीसोवन की बात छोड़ दीजिएगा, आम तौर पर पहले कोई नहीं था। कोई प्रदेश पर हक नहीं जता रहा था। लेकिन जैसे हम फैलते गए, एक अन्य प्रक्रिया सामने आने लगी। वह क्या है? कि हम अब ऐसे प्रदेश में भी घुसने लगे जहाँ पहले से लोग मौजूद हैं। हम में से किसी को इसमें आश्चर्य नहीं होता। हम इन्सानियत को अच्छी तरह पहचानते हैं। अलग दृष्टि से सवाल पूछें तो, 60 हज़ार साल पहले जो लोग यहाँ आए, सिर्फ उन्हीं लोगों के हम वंशज हैं या बीच में और कोई घुसकर भी आया था? यह जो तुलनात्मक शोध है, इसके ज़रिए थोड़ा-बहुत इस सवाल का भी उत्तर मिलने लगता है। वो कैसे? यदि 60 हज़ार साल पहले हम यहाँ पहुँचे, तो हम इसी तरीके की एक वर्गीकरण की स्कीम बना सकते हैं जिसमें यह तय हो कि अगर सिर्फ 60 हज़ार साल पहले का डीएनए होता तो कैसा दिखता। और अगर उसके सिवाय कुछ दिख रहा है, तो हो सकता है कि वह बाहर से आया हो। बाहर से अगर आया हो तो बाहरी डीएनए जो है, यूरोप में है, चीन में है, अफ्रीका में है, पूर्वी एशिया में है, द्वीप एशिया में है, उनका डीएनए लेकर हम अनुमान लगा सकते हैं कि कितने हज़ार साल पहले कोई अन्य, फिर लौटकर दक्षिणी एशिया में आया और उनकी वांशिक विरासत कितनी रही हम में। तो यह जब देखने लगे, तो यूँ लगने लगता है कि अण्डमान निकोबार के जो पुराने लोग हैं... 'आदिवासी' कहने में मुझे थोड़ी हिचकिचाहट होती है, लेकिन चलो ओरिजनल पीपल कहें आदिवासी को... उनके पूर्वज शायद वे लोग हैं जो 60 हज़ार साल पहले यहाँ मौजूद थे। हम में और उनमें वह वांशिक विरासत साझा है। लेकिन हम में और उनमें बड़े फर्क हैं। ये फर्क बड़े वांशिक फर्क हैं, अनुवांशिक फर्क हैं, जेनेटिक फर्क हैं, वह कैसे? वह यूँ कि पश्चिमी एशिया से 10-15 हज़ार साल पहले और लोग आए। अच्छा, ये जो लोग आए, इसका प्रागैतिहासिक इतिहास में कोई सबूत मिलता है? क्या पुरातत्व शास्त्र में, जीवाश्म शास्त्र में इसका कोई सबूत है कि 10-15 हज़ार साल पहले ये लोग आए? तो 'है'। वह कैसे? हम जानते हैं कि 10-15 हज़ार साल पहले अनेक जगहों में खेती का उद्‌गम हुआ। इससे पहले हम हंटर-गेदरर थे, हम शिकार करते थे और हम जंगल में चीज़ें इकट्ठी करते थे और खा-पीकर गुज़ारा करते थे। पहली बार, तकरीबन 10-15 हज़ार साल पहले, अनेक जगहों में अलग-अलग तरीकों से हम खेती करने लगे, और जैसे-जैसे हम खेती करने लगे, हम नगर बसाने लगे। क्योंकि अगर खेती करो तो धान मिले, अगर धान मिले तो

इतना धान मिले कि सिर्फ अपने लिए धान मिला, ऐसा न हो, बल्कि ज़्यादा मिले। ज़्यादा धान का हम क्या करें? व्यापार करें। और बाज़ार के लिए लोगों का इकट्ठा होना बिलकुल ज़रूरी है। तो हम शहर बनाने लगे, नगर बनाने लगे, हम ग्राम बनाने लगे। और जैसे-जैसे यह करने लगे वैसे-वैसे, जिसे अर्थशास्त्री सरप्लस वैल्यू यानी कि अधिशेष मूल्य कहते हैं, उसका निर्माण होने लगा। और सरप्लस वैल्यू का जैसे निर्माण हो तो उसे अपनाने के लिए काफी तरीके हमने अपनाए हैं। तो धीरे-धीरे खेती करने वाले लोग और खेती की आदत, खेती की संस्कृति, दोनों फैलने लगे। और हमारे डीएनए में सबूत है कि 10-15 हज़ार साल पहले शायद खेती के साथ, खेती की संस्कृति के साथ, जो लोग पश्चिमी एशिया से दक्षिणी एशिया में आए, उन्होंने भी हमारे डीएनए में अपने निशान छोड़े।

...जारी

सत्यजित रथ: राष्ट्रीय प्रतिरक्षाविज्ञान संस्थान में तीन दशक तक शोध करने के बाद अब इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस एजुकेशन एंड रिसर्च, पुणे में पढ़ाते हैं। पुणे से एम.बी.बी.एस., मुम्बई से एम.डी. (पैथोलॉजी) के बाद हैफ्किन इंस्टिट्यूट, ब्रौनडाइस युनिवर्सिटी व येल युनिवर्सिटी स्कूल ऑफ मेडिसिन में पोस्ट-डॉक्टोरल शोध किया। चार दशकों से प्रतिरक्षा तंत्र पर शोध के साथ-साथ विज्ञान शिक्षण व लेखन और स्वास्थ्य व चिकित्सा से जुड़े सामाजिक व आर्थिक मुद्दों में रुचि।

मकड़ियों का अद्भुत संसार
पुस्तक-चर्चा

किशोर पंवार

मकड़ियों को लोगों ने अपने-अपने अन्दाज़ में देखा है। जनमानस में घृणा की दृष्टि और डर की प्रमुखता है। वहीं फिल्मों में मकड़ियों के संसार को रहस्य और रोमांच के दायरे में समेटा गया है। इसी सन्दर्भ में मुझे *पारस मणि* नामक एक पुरानी संगीतमय फिल्म की याद आ रही है जिसमें फिल्म का नायक पारस मणि प्राप्त करने के लिए एक विशाल मकड़ी और उसके जाले से जूझता दिखाई दिया था। अन्य डरावनी एवं भुतहा फिल्मों में मकड़ियाँ तो नहीं दिखाई जातीं पर उनके बड़े-बड़े जालों की भरमार रहती है। हॉलीवुड की विज्ञान फन्तासी फिल्मों में भी स्पाइडर-मैन जैसी कल्पना हमें एक अलग ही दुनिया में ले जाती है जहाँ स्पाइडर-मैन लोगों का मददगार है।

इसके अतिरिक्त वैज्ञानिकों का अन्दाज़-ए-बयाँ तो कुछ अलग ही है जो मकड़ियों को एक विशिष्ट, विचित्र एवं अद्भुत जीव के रूप में देखते हैं। उनकी रचना एवं जीवन वृत्त का बारीकी-से अध्ययन कर, उनसे जुड़े रहस्यों को सटीकता के साथ उजागर करते हैं।

पुस्तक *मकड़ियों का अद्भुत संसार* की दृष्टि पूर्णत: लोक विज्ञान आधारित है जिसमें वैज्ञानिक तथ्यों को बड़े ही सरल और रोचक तरीके से प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक की सामग्री उत्कृष्ट और भाषा प्रवाहपूर्ण है। उसकी कथामयी जीवन्त प्रस्तुति इसी बात का स्पष्ट प्रमाण है।

विज्ञान के क्षेत्र में अक्सर देखा जाता है कि अच्छे वैज्ञानिक निपुण वक्ता व लेखक नहीं होते। वहीं अच्छे प्राध्यापक बढ़िया लेखक और वक्ता तो हो सकते हैं पर अक्सर उनमें पैनी वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव होता है। परन्तु इस पुस्तक के लेखक डॉ. विपुल कीर्ति शर्मा में ये सभी विरल और विलक्षण गुण भलीभाँति देखने को मिलते हैं। वे लोकप्रिय प्राध्यापक, अच्छे लेखक और उत्कृष्ट वैज्ञानिक एवं शोधकर्ता भी हैं। साथ ही, एक उम्दा पुरस्कृत फिल्मकार भी।

इस पुस्तक में कुल 22 अध्याय हैं जिनकी सामग्री को 114 पृष्ठों में समेटा गया है जिनमें मकड़ियों की दुनिया की जटिल-से-जटिल बातें भी इतनी रोचकता के साथ परोसी गई हैं कि भोजन की यह थाली षट रसों से भरपूर लगती है और ललचाती भी है कि अब आगे और क्या मिलेगा!

'क्या होती हैं मकड़ियाँ, कब धरती पर आईं मकड़ियाँ' जैसे पाठ इनकी शारीरिक रचना की बारीकियों और उनके जैव-विकास के प्रक्रम को बहुत ही सटीकता के साथ हम से रूबरू कराते हैं। एमेशिया, ब्लैक विडो, नेफिला, टेरेन्ट्युला, डरावनी वुल्फ मकड़ियाँ, क्रेब स्पाइडर आदि आलेख तरह-तरह की मकड़ियों के रूप-रंग और क्रियाकलापों के बारे में ठोस वैज्ञानिक जानकारी के स्रोत हैं।

एमेशिया जैसी नकलची मकड़ियाँ जो लाल चींटे ओएकोफिला का रूप धर उन्हें ही कैसे धोखा देती हैं, का किस्सा तो बहुत ही रोमांचक है तथा बेहतरीन शैली में लिखी गई एक शानदार दास्तान है।

ब्लैकविडो में नर का प्रेमालाप, गिटार बजाना एवं दुल्हन को घूँघट में रखना आदि उपमाएँ तो कोई संवेदनशील प्रेमीमन और भाषाविद् ही दे सकता है। यह गुण लेखक को विरासत में मिला है क्योंकि उनके पिता श्री अशोक शर्मा भी जाने-माने प्राध्यापक एवं विद्वान लेखक हैं।

नेफिला, गोताखोर आर्जिरोनेटा, स्पाइडरमैन की परिकल्पना, मकड़ी के जीन से बने ट्रांसजेनिक रेशम कीट – मकड़ियों पर की जा रही नवीनतम शोध पर आधारित ये पाठ जन उपयोगी जानकारी से भरपूर हैं।

हालाँकि, हिन्दी की इस पुस्तक में जेनेरा, फैमिली आदि अँग्रेज़ी शब्दों की जगह यदि वंश और कुल जैसे शब्दों का उपयोग किया जाता और डीपोलेराइज़्ड (बिगाड़ दिए गए) शब्दों से बचा जाता तो शायद पुस्तक और बेहतर हो सकती थी।

कुल मिलाकर, यह पुस्तक रोचक, नवीनतम जानकारियों से परिपूर्ण और पठनीय है। पुस्तक में इस्तेमाल फोटो स्वयं लेखक द्वारा खींचे गए हैं, जो बेहद सुन्दर और स्पष्ट हैं। इसके प्रकाशन हेतु एनबीटी के सम्पादक प्रकाश चतुर्वेदीजी और लेखक शर्माजी बधाई के पात्र हैं। इसी तरह की और भी लोकोपयोगी पुस्तकों की उम्मीद दोनों से की जा सकती है ताकि हिन्दी में अच्छी विज्ञान पुस्तकों की जो कमी नज़र आती है, उसकी यथासम्भव पूर्ति हो सके।

आइए, आगे इसी पुस्तक का एक रोचक अध्याय पढ़ते हैं।

किशोर पंवार: शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर में बीज तकनीकी विभाग के विभागाध्यक्ष और वनस्पतिशास्त्र के प्राध्यापक रहने के बाद सेवानिवृत्त। 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' से लम्बा जुड़ाव रहा है जिसके तहत *बाल वैज्ञानिक* के अध्यायों का लेखन और प्रशिक्षण देने का कार्य किया है। *एकलव्य* द्वारा जीवों के क्रियाकलापों पर आपकी तीन किताबें प्रकाशित। शौकिया फोटोग्राफर, लोक भाषा में विज्ञान लेखन व विज्ञान शिक्षण में रुचि।

समूहवासी, सामाजिक और बस्तीवासी मकड़ियाँ

विपुल कीर्ति शर्मा

अफ्रीका के भूखे शेरों के समूह द्वारा जंगली भैंसे का शिकार दिखाने वाले वृत्तचित्र (डॉक्यूमेंट्री) में आपने देखा होगा कि एक हज़ार किलोग्राम वज़न वाले युवा नर भैंसे को गिराने और मार डालने के लिए शेरों का पूरा समूह लग जाता है। अकेले शेर को ये भैंसे अपने सींग से गेंद की तरह उछालकर फेंक देते हैं। इसी प्रकार बड़े शिकार को मारने के लिए कुछ मकड़ियाँ भी समूह में शिकार करती हैं। ऐसी मकड़ियों को 'सामाजिक मकड़ियाँ' या 'सोशल स्पाइडर' कहते हैं।

यद्यपि अधिकांश मकड़ियाँ एकाकी होती हैं, अर्थात् अकेले रहती हैं। ये अवसर मिलने पर अपनी ही जाति के अन्य सदस्यों को मारकर भी अपनी भूख शान्त करती हैं, किन्तु कुछ मकड़ियाँ सामाजिक भी होती हैं। ये समूह में साथ-साथ रहती हैं और साथ में रहने के लिए सामुदायिक घोंसला बनाती हैं। इनका समूह शिकार पकड़ने के लिए 'केप्चर वेब' बनाकर शिकार करता है। पूरा समूह एकसाथ भक्षण करता है। इनमें प्रजनन तथा बच्चों की परवरिश भी सहयोगात्मक होती है। ये मकड़ियाँ समूह में रहकर एक-दूसरे के सहयोग से ही अपनी सारी ज़रूरतों को पूरा करती हैं।

समूहवासी मकड़ियाँ दो प्रकार की

होती हैं – सहयोगपूर्वक शिकार एवं प्रजनन करने वाली तथा एक-दूसरे पर निर्भर सामाजिक यानी 'सोशल मकड़ियाँ' तथा केवल समूह में रहने वाली, किन्तु आत्मनिर्भर बस्तीवासी यानी 'कोलोनियल मकड़ियाँ'।

समूहवासी, सामाजिक तथा बस्तीवासी मकड़ियों को लाभ के साथ-साथ कई हानियाँ भी हैं। समूहवासी होने के कारण शिकारी द्वारा देखे जाने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। दोनों ही प्रकार की मकड़ियाँ हमारे आसपास बहुतायत में पाई जाती हैं। इनके सामाजिक ताने-बाने में प्रत्येक सदस्य के व्यवहार को भी समझा जा सकता है। तो आइए देखें, कैसे इन पर रोचक शोध करके इनके व्यवहार को समझा गया है।

सामाजिक मकड़ी - स्टेगोडायफस

ईरिसिडी कुल की 21 प्रजातियाँ अफ्रीका, यूरोप एवं एशिया में मिलती हैं। इनमें से एक *स्टेगोडायफस सारासिनोरम* को भारतीय सहयोगी मकड़ी यानी 'इंडियन कोऑपरेटिव स्पाइडर' भी कहते हैं। यह मकड़ी भारत, श्रीलंका, नेपाल तथा म्यांमार में पाई जाती है।

सभी मकड़ियों की तरह स्टेगोडायफस में भी आठ नेत्र होते हैं। नेत्र सिर पर पास-पास न होकर काफी दूर-दूर स्थित होते हैं। सिर पर आगे की तरफ एक भूरे रंग का त्रिकोण इनकी पहचान है। उदर के ऊपर एक या दो भूरे रंग के पट्टे आगे से पीछे तक होते हैं। मादा सिर से उदर तक 8 से 14 मि.मी. तथा नर 6 से 8 मि.मी. लम्बे होते हैं। बड़ी या वयस्क स्टेगोडायफस मखमली त्वचा वाली और अंगूर के जैसी फूली हुई गोल होती हैं।

ये साझेदारी से बनाए गए बड़े घोंसले में रहती हैं। घोंसला पत्तियों, सूखी पतली टहनियों तथा शिकार किए गए कीट-पतंगों के अवशेषों को मज़बूत रेशमी धागों से जोड़कर बनाया जाता है। एक घोंसले में अनेक सदस्य हो सकते हैं, जिनकी संख्या भोजन की उपलब्धता पर निर्भर करती है। बड़े घोंसले में 100 स्टेगोडायफस तक देखी गई हैं।

ये जाला रात में बनाती हैं। कीट व पतंगों के फँसने पर जाला उलझकर छोटा हो जाता है। शिकार के जाल में फँसते ही ये सामूहिक हमला करती हैं। इनका जाल 'कब्ज़ा जाला' कहलाता है, जो एक प्रकार का परदा होता है। इसकी संरचना मछली पकड़ने वाले जाल के समान होती है। इनके विषदन्तों के विष से लकवाग्रस्त हुआ शिकार शक्तिहीन हो जाता है तब आक्रमण में भाग लेने वाले सभी सदस्य शिकार की दावत में शामिल हो जाते हैं।

स्टेगोडायफस में मातृत्वता का विकास

सामाजिक मकड़ियों का विकास उप-सामाजिक मकड़ियों से हुआ

चित्र-1: *सामाजिक मकड़ियों का मछली पकड़ने वाले जाल जैसा जाला। इसे 'कब्ज़ा जाला' कहा जाता है।*

प्रतीत होता है। इनमें मातृत्वता अधिक विकसित दिखाई देती है। नन्हीं मकड़ियों की बेहतर देखभाल के कारण वे जाले से दूर नहीं जातीं तथा एक समूह या परिवार के रूप में विकसित होती हैं।

मादा स्टेगोडायफस अण्डथैली की सुरक्षा करती है। वह स्वयं के द्वारा खाए और पचाए भोजन को मुख से उगलकर बच्चों को खिलाती है। शिशु कुछ बड़े हो जाने के बाद अपनी जैविक माँ को ही खा जाते हैं, क्योंकि उसका शरीर स्वतः अन्दर से गलने लगता है। ऐसा विशेष परिस्थितियों में होता है। इस स्वभाव को 'मेट्रिफेगी' कहते हैं।

प्रजनन के पश्चात दो प्रकार के अण्डों का निर्माण होता है। एक तो सामान्य प्रकार के अण्डे जो निषेचन के पश्चात शिशु में विकसित होते हैं। दूसरे प्रकार के अण्डे 'ट्रॉफिक एग' होते हैं, जो अनिषेचित रहते हैं। ट्रॉफिक एग अन्य विकसित होते शिशुओं का भोजन बन जाते हैं। ट्रॉफिक एग का निर्माण मकड़ियों, मछलियों, उभयचरों तथा कीटों में भी पाया जाता है। स्टेगोडायफस में ट्रॉफिक एग का निर्माण उन तीन तरीकों में से एक है जो नवजात शिशुओं या भ्रूण को विकास के लिए बेहतर मौका देता है।

जैसे-जैसे शिशु बड़े होते जाते हैं, पुरानी त्वचा छोटी रह जाती है और उसे उतार दिया जाता है। नई त्वचा पुरानी का स्थान ले लेती है। इसे 'मोल्टिंग' या 'निर्मोचन' कहते हैं। स्टेगोडायफस में तीन निर्मोचन तक के बच्चे, माता एवं साथी मादा मकड़ियों द्वारा उगला हुआ भोजन प्राप्त करते हैं। *स्टेगोडायफस लिनियेटस* अपने पूरे जीवनकाल में केवल एक या दो बार ही अण्डे देने और बच्चों को पालने का कार्य करती है।

चित्र-2: *मादा स्टेगोडायफस मकड़ी अण्डे की थैली और बच्चों के साथ।*

अण्डथैली में ट्रॉफिक अण्डों से भोजन प्राप्त करने के बाद भी बच्चे बहुत असहाय होते हैं। न तो उनमें जाला बुनने का अंग 'स्पिनरेट' और न ही सिल्क ग्रन्थि विकसित होती है। मादा मकड़ियाँ ही अण्डथैली को काटकर बच्चों को बाहर आने का रास्ता देती हैं। फिर बच्चे मादा मकड़ी द्वारा उगले तरल भोजन को सोखकर वृद्धि करते हैं। शिशुओं के अण्डथैली से आने के पूर्व ही यदि मादा की मृत्यु हो जाए तो बच्चे बाहर नहीं आ पाते तथा अण्डथैली के अन्दर ही मर जाते हैं। अण्डथैली से बाहर आने के बाद अगर मादा मकड़ी मर जाए तो दूसरी मादा मकड़ियाँ उन्हें उगला हुआ भोजन देकर, उनका लालन-पालन करती हैं।

मेट्रिफेगी क्या है?

मेट्रिफेगी के दौरान मादा मकड़ी का शरीर स्वतः अन्दर से ही पाचित होने लगता है। पाचन प्रक्रिया तभी प्रारम्भ हो जाती है जब मादा मकड़ी अण्डथैली बनाती है। मकड़ी के बच्चों के अण्डथैली से बाहर आते ही मेट्रिफेगी की प्रक्रिया तेज़ होती जाती है। यद्यपि मादा मकड़ी बाहर से स्वस्थ दिखती है, परन्तु उदर के अन्दर अण्डकोश, हृदय व आसपास के अंगों को छोड़कर धीरे-धीरे सभी अंग गलने लगते हैं। मेट्रिफेगी प्रारम्भ होने के बिलकुल पहले मकड़ी का पूरा उदर द्रव से भर जाता है। अण्डथैली से बाहर आने के पूर्व ही मादा चिपचिपे कब्ज़ा जाले के रेशमी

धागों का निर्माण बन्द कर देती है, क्योंकि अब उसे शिकार को पकड़ने की आवश्यकता भी नहीं है। बच्चों को मेट्रिफेगी द्वारा भोजन देने की प्रक्रिया एक बार प्रारम्भ होने के बाद रोकी भी नहीं जा सकती। मकड़ी के बच्चे मादा के मुँह के आसपास जमा होकर उसके पाचित होते शरीर को पूरा सोख लेते हैं और अन्त में मादा मकड़ी की बाह्य त्वचा का खोल ही शेष रह जाता है। श्नाइडर एवं अन्य वैज्ञानिकों ने बताया है कि यदि मेट्रिफेगी प्रारम्भ होने के पूर्व ही अण्डथैली या मकड़ी के बच्चों को मादा के पास से हटा दिया जाए तो मादा पुनः अण्डथैली बना देती है। इस प्रयोग से सिद्ध होता है कि अण्डकोष मेट्रिफेगी के सबसे अन्त में समाप्त होने वाला अंग है। परजीवी वास्प और चींटी जैसे अन्य शिकारियों के आक्रमण से नष्ट हो चुकी अण्डथैली तथा अण्डों को मेट्रिफेगी के पूर्व अण्डकोश द्वारा फिर से बनाने का महत्वपूर्ण एवं अन्तिम अवसर होता है।

सामाजिक तथा साझेदारी से शिशुओं को पालने वाली तीनों स्टेगोडायफस जातियों में आत्मघाती मेट्रिफेगी देखी गई है। मोर सालोमोन ने अपने पीएच.डी. अध्ययन के दौरान देखा कि छत्ते की अपरिपक्व, परन्तु बड़ी मादाएँ तथा परिपक्व मादाएँ जो नरों से मैथुन नहीं कर पाई थीं, वे भी शिशुओं को पालने में महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। वे भी मादा स्टेगोडायफस के समान ही पचा भोजन उगलने एवं मेट्रिफेगी का कार्य करती हैं और अगली पीढ़ी को बचाने में महत्वपूर्ण

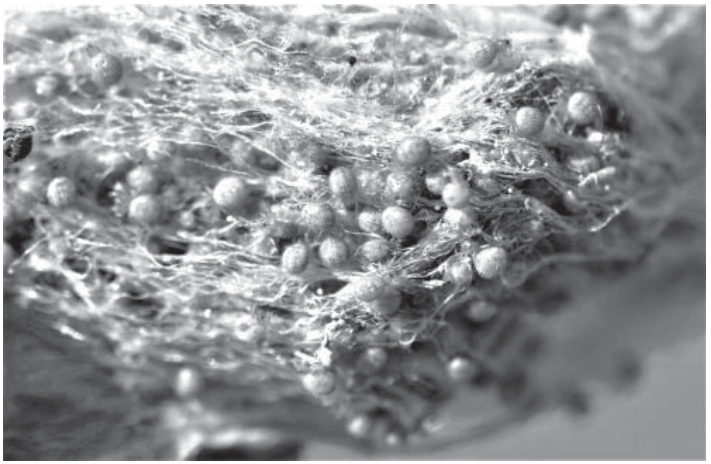

चित्र-3: *मादा मकड़ियाँ अण्डथैली को काटकर बच्चों को बाहर आने का रास्ता देती हैं। बाहर आने के बाद बच्चे मादा मकड़ी द्वारा उगले तरल भोजन को सोखकर वृद्धि करते हैं।*

भूमिका निभाती हैं। निःस्वार्थ भावना से अन्य मादाओं द्वारा प्रजननकारी मादा का शिशु पालने में सहयोग करने का उदाहरण उपकारी व्यवहार या एल्ट्रूइज़्म कहलाता है।

प्रजननकारी मादा में मेट्रिफेगी की प्रक्रिया ऐसी ही प्रतीत होती है, जैसे मेंढक के टेडपोल के कायान्तरण में पूँछ का गलकर सोख लिया जाना या मानव शिशु के गर्भावस्था में विकास के दौरान नन्हे हाथ-पैरों से उँगली वाले हाथ-पैरों का निर्माण या मासिक धर्म के अन्त में निषेचन न होने की अवस्था में इंडोमेट्रियम का नष्ट होकर बाहर निकलना। तीनों उदाहरणों में ऐपोपटोसिस या प्रोग्राम्ड सेल डेथ या कोशिका आत्मघात देखा गया है। क्या स्टेगोडायफस की मेट्रिफेगी में भी ऐपोपटोसिस की प्रक्रिया चलती है? वे कौन-से कारक हैं, जो मादा में या अन्य मादाओं को मेट्रिफेगी प्रारम्भ करने के लिए उकसाते हैं? किस प्रकार नर स्टेगोडायफस इस कार्य से बच जाते हैं? या उनका भविष्य क्या होता है? शोधार्थियों की टीम से जुड़कर ऐसे अनेक प्रश्नों का उत्तर आप भी खोज सकते हैं।

असाधारण लिंग अनुपात

सामाजिक मकड़ियों में एक और लक्षण देखा गया है। वह है – मादा पूर्वाग्रह लिंग अनुपात। एक सामान्य समाज में नर एवं मादा का अनुपात लगभग बराबर होता है। इसे फिशेरियन लिंग अनुपात कहते हैं। परन्तु सामाजिक मकड़ियों में नर की तुलना में मादा दोगुनी तक होती हैं। भ्रूण में ही लिंग अनुपात निश्चित होने के कारण मादा बच्चों की संख्या ज़्यादा होती है। मादा *स्टेगोडायफस डुमिकोला* तो बच्चों में नर का प्रतिशत केवल 17 प्रतिशत ही रखती है। *एलिनोसिमस डोमिंगो* में नर बच्चों का प्रतिशत निश्चित होता है। एक अण्डथैली में केवल एक ही नर। ऐसा लगता है कि सामाजिक मकड़ियों में उतने ही नर उत्पन्न किए जाते हैं, जितने की आवश्यकता निषेचन के लिए होती है, अतिरिक्त नहीं। निषेचन के पूर्व ही जनक नर एवं मादा मकड़ियाँ नए स्थान पर छत्ता बनाने निकल जाती हैं। परन्तु एक ही वंश के या सगे-सम्बन्धी होने के कारण उनमें आनुवंशिक समानताएँ होती हैं। अतः प्रजनन के कारण इनमें विभिन्नता नहीं आती।

बस्तीवासी मकड़ियाँ

सामाजिक मकड़ियों के विपरीत बस्तीवासी या सामुदायिक मकड़ियों में सहयोग की भावना कम होती है। बस्तीवासी मकड़ियों की संख्या सामाजिक मकड़ियों से भी कहीं अधिक हो सकती है। प्रत्येक बस्तीवासी मकड़ी का पूरी बस्ती के क्षेत्र में भोजन पकड़ने का एक इलाका होता है। पूरी बस्ती में ये

एक-दूसरे के बच्चों की परवरिश में मदद नहीं करतीं।

अनेक घर एवं भोजन पकड़ने के सीमित स्थान मिलकर पूरी बस्ती का निर्माण करते हैं। बस्तीवासी मकड़ियों का समूह भोजन की तलाश में उड़ रहे पक्षियों के समूह के समान ही है जो एक साथ उड़ते हैं तथा पास-पास रहते हैं, परन्तु भोजन तलाशते हुए वे न तो किसी की मदद लेते हैं और न ही मदद देते हैं। बस्तीवासी मकड़ियों की बस्तियाँ कितने समय तक बनी रहेंगी, यह भोजन की उपलब्धता एवं नए सदस्यों के बस्ती से जाने की दर पर निर्भर करता है।

बरसात के बाद आप भी टेंट के समान जाला बनाने वाली मकड़ी सिरटोफोरा की बस्तियाँ बबूल के वृक्षों, टेलीफोन एवं बिजली के तारों पर आसानी-से देख सकते हैं। मच्छरदानी के समान बारीक छेद वाली चादर के ऊपर तथा नीचे अनेक धागों से मादा टेंट का निर्माण करती है। टेंट के नीचे उलटा लटककर मकड़ी शिकार के फँसने का इन्तज़ार करती रहती है। नर से मैथुन के बाद हलके हरे रंग की अण्डथैली एक के नीचे एक लटकी रहती है। जैसे-जैसे अण्डथैली से मकड़ी शिशु निकलते हैं, वे शिकार की ज़्यादा उपलब्धता होने पर पास ही नए जाल का निर्माण करते हैं। नए जाल में कुछ धागे पुराने जाले से जोड़े जाते हैं। इस प्रकार नए मकड़ी शिशु एक नई बस्ती का निर्माण कर लेते हैं जो आकार तथा संख्या में

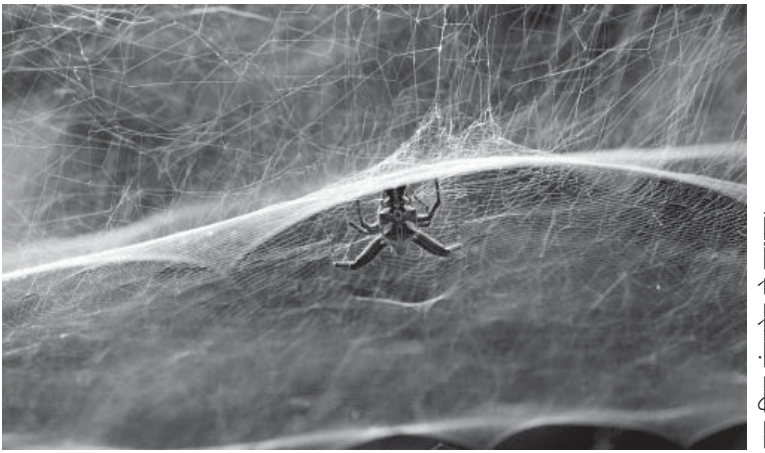

यह चित्र इंटरनेट से साभार।

चित्र-4: *मादा सिरटोफोरा मकड़ी मच्छरदानी के समान बारीक छेद वाली चादर के ऊपर तथा नीचे अनेक धागों से टेंट का निर्माण करती है। और टेंट के नीचे उलटा लटककर शिकार के फँसने का इन्तज़ार करती है।*

बहुत विशाल रूप ले लेती है। ऐसी बड़ी बस्ती में मकड़ी शिशु को जाला बनाने में कम मेहनत लगती है, क्योंकि वह दो बड़े जालों के बीच अपने छोटे जाले का निर्माण करता है तथा उसे सुरक्षा भी मिलती है।

जब एक ही बस्ती में इतनी सारी मकड़ियाँ एकत्रित हो जाती हैं तो वे शिकारी की नज़र में आ जाती हैं। अनेक प्रकार की परजीवी ततैया इन मकड़ियों का शिकार करने की ताक में घूमती रहती हैं। जैसे ही ततैया या अन्य शिकारी बस्ती के नज़दीक आते हैं, सावधान मकड़ी ज़ोर-ज़ोर-से जाले को हिलाने लगती है। चेतावनी का यह सन्देश पूरी बस्ती में फैल जाता है और सभी मकड़ियाँ सतर्क हो जाती हैं। कुछ मकड़ियाँ अण्डथैली को अपने पैरों से घेरकर बैठ जाती हैं।

बस्तियों में रहने वाली मकड़ियों पर अभी बहुत अध्ययन होना बाकी है। पास-पास जाले होने पर झगड़े भी बहुत होंगे। इन झगड़ों से कितना नुकसान या फायदा होता है? प्रजनन का प्रकार एवं व्यवहार आदि पर भी अध्ययन किया जाना शेष है। कुछ कूदने वाली मकड़ियाँ भी बस्ती बनाकर रहती हैं। इनमें क्या अनुकूलन हुए हैं तथा इनके व्यवहार में क्या परिवर्तन हुए हैं, ये सभी शोध के विषय हैं।

ततैया, मधुमक्खी तथा चींटियों के सामाजिक व्यवहार पर बहुत कार्य किया गया है। इनके समाज में सदस्यों को कार्य विभाजन एवं शरीर संरचना के आधार पर भी पहचाना जा सकता है। सामाजिक मकड़ियों में इस प्रकार के कार्य का अध्ययन किया जाना शेष है। मकड़ियों के उदर पर रंगीन पेंट लगाकर प्रत्येक सदस्य के व्यवहार और व्यक्तित्व को देखा जा सकता है। मातृत्वता के प्रयोग के लिए अण्डथैली पर भी रंगीन पेंट लगाकर मादा मकड़ियों के व्यवहार का भलीभाँति अध्ययन करने की आवश्यकता है।

विपुल कीर्ति शर्मा: शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर में प्राणिशास्त्र के वरिष्ठ प्रोफेसर। इन्होंने 'बाघ बेड्स' के जीवाश्म का गहन अध्ययन किया है तथा जीवाश्मित सीअर्चिन की एक नई प्रजाति की खोज की है। नेचुरल म्यूज़ियम, लंदन ने सम्मान में इस प्रजाति का नाम उनके नाम पर *स्टीरियोसिडेरिस कीर्ति* रखा है। वर्तमान में, वे अपने विद्यार्थियों के साथ मकड़ियों पर शोध कार्य कर रहे हैं।

सभी फोटो: विपुल कीर्ति शर्मा।

यह लेख एनबीटी द्वारा प्रकाशित विपुल कीर्ति शर्मा की पुस्तक *मकड़ियों का अद्भुत संसार* से साभार।

किताब का नाम: *मकड़ियों का अद्भुत संसार,* प्रकाशक - एनबीटी, भारत, वर्ष: 2022, रंगीन, पृष्ठ संख्या: 114, मूल्य: ₹ 405

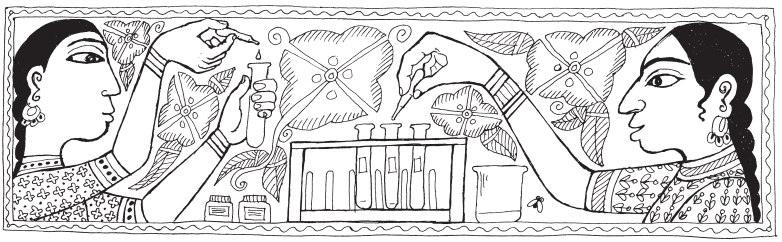

चित्र: कैरन हैडॉक

पानी की जाँच

कालू राम शर्मा

बाल विज्ञान का एक वर्ष का अनुभव लिए बच्चे कक्षा छठी से सातवीं में पहुँच चुके थे। अब तक वे सातवीं की *बाल विज्ञान* के कोई आधा दर्जन अध्याय कर चुके थे। इन अध्यायों में 'एक मज़ेदार खेल', 'जन्तुओं की दुनिया', 'फूलों से जान-पहचान', 'ध्वनि' व 'पौधों में प्रजनन' थे। अब बारी थी 'जल – मृदु और कठोर' की।

वैसे पहले-पहल मास्साब ने 'जल – मृदु और कठोर' वाले पाठ को छोड़ने का मन बना लिया था। इसकी एकमात्र वजह यह थी कि इस पाठ में से प्रायोगिक और लिखित परीक्षा में प्रश्न कम ही बन पाते हैं। हालाँकि, 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' ने तथाकथित परीक्षा को भी चुनौती देने की भरपूर कोशिशें कीं, मगर फिर भी इसकी सीमाएँ साफ तौर पर परिलक्षित होती थीं। प्रायोगिक परीक्षा में कुछ खास अध्यायों से ही प्रयोग करने को दिए जाते थे। लिखित परीक्षा में भी इस पाठ से नाम मात्र प्रश्न ही पूछे जाते थे। वैसे एक अन्य नज़रिए से देखें तो पानी जैसी चीज़ हमारे जीवन का अहम हिस्सा है। यों कहें कि 'पानी ही जीवन है', इसके बावजूद परीक्षा की प्राथमिकता में शामिल न होने की वजह से, यह अध्याय शिक्षण का हिस्सा बनने से कई बार रह जाता। परीक्षा शिक्षा पर भारी पड़ जाती। तद्यपि कोई ऐसी अवधारणा जिस पर शिक्षक की बेहतर समझ बने और उस पर काम करने में कुछ रोमांच पैदा हो, तो फिर वह कक्षा-शिक्षण का हिस्सा बनने से कैसे वंचित रह सकती है?

ऐसा ही कुछ हुआ इस अध्याय के साथ। चूँकि इस अध्याय पर शाला संगम केन्द्र पर आयोजित मासिक बैठक में विस्तृत चर्चा हुई थी, यह एक वजह थी कि मास्साब ने आखिरकार इसे बच्चों के साथ करने

का मन बना ही लिया। मासिक बैठक, शिक्षकों का एक ऐसा मंच रहा है जहाँ शाला संगम केन्द्र के अन्तर्गत आने वाले समस्त स्कूल के बाल विज्ञान शिक्षण करने वाले शिक्षक शामिल होते। इस बार की मासिक बैठक में 'जल – मृदु और कठोर' के लगभग सारे प्रयोग करवाए गए थे। इसके लिए उस इलाके के विविध स्रोतों से पानी एकत्रित किया गया था। जल की जाँच के लिए शाला संगम केन्द्र पर आवश्यक रसायनों के घोल बनाए गए और जाँच की गई थी।

बच्चों ने कक्षा में पानी वाला पाठ पढ़ाने का आग्रह किया। दरअसल, बच्चों को तो यह ठीक से पता भी नहीं था कि आखिर इस अध्याय में किस प्रकार के प्रयोग किए जाने होंगे। यानी कि बच्चों के पास *बाल वैज्ञानिक* होने के बावजूद, चाहे उन्होंने पानी वाले अध्याय के पन्नों पर नज़र डाली हो या न डाली हो, वे इस बात को नहीं पकड़ पाए थे कि इस अध्याय द्वारा पानी को लेकर किस प्रकार की समझ बनेगी। उन्होंने मास्साब से आग्रह केवल इस आधार पर किया था कि अध्यायों की सूची में अगला अध्याय 'जल – मृदु और कठोर' था। बच्चों के कहने पर मास्साब ने हामी भर ली।

बच्चे कक्षा में मास्साब के आने का इन्तज़ार कर रहे थे। कुछ देर बाद, जब मास्साब ने प्रवेश किया तो कक्षा में टोलियाँ बन चुकी थीं। "तो आज से हम पानी की जाँच वाला पाठ शुरू करते हैं।" मास्साब ने बात को जारी रखा, "पानी का इस्तेमाल तो तुम रोज़ ही करते हो। पानी इतनी गज़ब की चीज़ है कि इसके बिना हम ज़िन्दा नहीं रह सकते। वैसे तो तुम पानी के कई गुण जानते हो। अच्छा, ऐसा करते हैं कि सबसे पहले पानी के गुणों की सूची बनाते हैं।"

टोलियों ने पानी के गुणों की सूची बना डाली। पानी के गुणों की सूची बनाते-बनाते आधा पीरियड बीत चुका था।

कहाँ का कैसा पानी?

मास्साब ने कक्षा की कार्यवाही को आगे बढ़ाया। "तो इस पाठ में हम पानी के खास गुणों का अध्ययन करेंगे। अच्छा, ये बताओ कि क्या तुमने कभी ऐसे पानी का इस्तेमाल किया है जिसमें साबुन लगाने पर झाग नहीं बनता? अगर हाँ, तो यह पानी कहाँ का था?" दरअसल, मास्साब ने यह प्रश्न *बाल वैज्ञानिक* में से ही पढ़कर पूछा था।

नारंगी के पिता हर बार कपड़े धोते वक्त बुदबुदाते, "बड़े कुएँ का पानी बहुत मोटा है। इसमें कपड़े साफ नहीं धुलते।" इस बात को नारंगी पकड़ चुकी थी कि जब कपड़े साफ नहीं धुलते तो हो सकता है कि इसका लेना-देना झाग से ही हो। वह सोचकर बोली, "मास्साब, बड़े कुएँ के पानी में झाग नहीं बनता।"

"मास्साब, बड़े कुएँ के पानी को तो हम पीते भी नहीं।" विष्णु बैठे हुए ही बोला।

केशव को लगा कि वह भी कुछ बोले, इसलिए उसने कहा, "हम तो टाँके का पानी पीते हैं।"

"बड़े कुएँ का पानी क्यों नहीं पीते?" मास्साब ने अचरज भरी मुद्रा बनाकर दोहराया। "बड़े कुएँ में ऐसा क्या है कि उसका पानी पीने लायक नहीं है? और टाँके के पानी में ऐसा क्या है कि उसे पीते हैं?" केशव को एहसास हुआ कि मास्साब ने उसकी बात को भी ध्यान से सुना।

केशव सोच में डूब गया। "मास्साब, बड़े कुएँ का पानी मीठा नहीं लगता।"

डमरू दुबके हुए, बैठे-बैठे ही बोला, "मेरी माँ कहती है कि उस कुएँ के पानी में दाल नहीं गलती।"

"क्यों झाग नहीं बनता बड़े कुएँ के पानी में? क्यों दाल नहीं गलती बड़े कुएँ के पानी में?" मास्साब ने सवाल किए।

टोलियों में बच्चे सोचते और सोचते जा रहे थे। वे सोच रहे थे कि आखिर पानी में ही कुछ तो ऐसा होगा कि दाल नहीं गलती उसमें। उसमें ऐसा क्या होगा कि झाग नहीं बनता? इसको लेकर उन्हें कोई सूत्र पकड़ में नहीं आ रहा था। पर यह सवाल उन्हें सोचने के लिए ज़रूर प्रेरित कर रहा था। हाँ, उनके अनुभव इस प्रकार के ज़रूर थे, जिन्हें वे बयाँ भी कर रहे थे। वैसे कक्षा में अनुभवों को शामिल करना शिक्षा का अहम हिस्सा है, जो *बाल विज्ञान* में भी कई जगहों पर एक सहज प्रक्रिया के रूप में होता दिखता है।

"हाँ, तो इन्हीं सवालों के जवाब खोजने की कोशिश करेंगे। चलिए, सबसे पहले कुछ प्रयोगों की तैयारी करते हैं। ...तो हम अलग-अलग स्थानों जैसे कुआँ, तालाब, हैंडपम्प आदि का पानी लाएँगे। अच्छा, तो तुमको याद है न कि मैंने तुमसे बरसात का पानी इकट्ठा करवाया था।"

जाँच की तैयारी

दरअसल, मास्साब ने बच्चों की मदद से बरसात के पानी को इकट्ठा कर लिया था। बरसात के पानी को इकट्ठा करने के लिए बरसात में लोहे के पीपे को खुली जगह पर रख दिया गया था। इस बात का ध्यान रखा गया था कि उसमें बाहर से मिट्टी वगैरह न गिरे। इकट्ठे किए

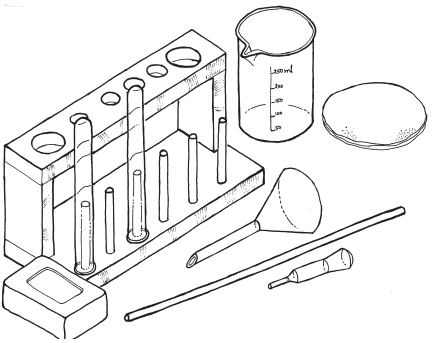

गए पानी को ग्लूकोज़ (सलाइन) की बोतल में भरकर रखा गया था। पास के कस्बे के अस्पताल से ग्लूकोज़ की बोतलों को साफ करके किट में शामिल कर लिया गया था।

मास्साब अपने साथ एक साबुन और डिटर्जेंट लेकर आए थे जो उन्होंने टेबल पर रख दिए। उन्होंने साबुन को टेबल से उठाकर अपने हाथ में लिया। "तो हमारे पास बरसात का पानी है। बरसात का पानी एकदम साफ होता है। इसे हम 'आसुत जल' कहते हैं। अगला काम होगा – साबुन का घोल बनाना। हमें इस साबुन का घोल बनाना है जो मेरे हाथ में है।" मास्साब ने स्पष्ट करना उचित समझा। "जो साबुन हम नहाने के काम में लेते हैं, उसे हम साबुन कह रहे हैं। हमें कपड़े धोने वाली टिकिया, जिसे हम डिटर्जेंट कहते हैं, उसका इस्तेमाल भी अलग से करना है।" मास्साब ने बात को जारी रखा।

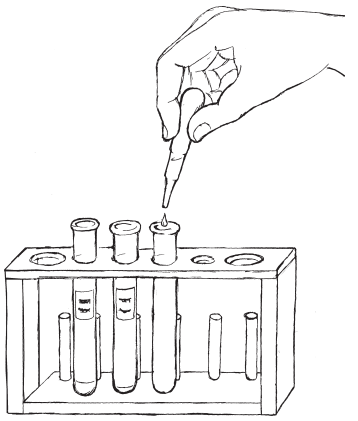

"आधा बीकर पानी लेना है और उसमें डिटर्जेंट की टिकिया डालनी है। घोल थोड़ा गाढ़ा बनाना होगा।"

कक्षा में सामूहिक रूप से घोल बनाने की प्रक्रिया शुरू हुई। आसुत जल से भरी ग्लूकोज़ की बोतल मास्साब ने टेबल पर लाकर रख दी। सभी बच्चे टेबल के इर्द-गिर्द एकत्रित हो गए। बीकर को आसुत जल से भर लिया तथा उसमें साबुन के छोटे-छोटे टुकड़े काट-काटकर डाल दिए गए। कुछ देर तक साबुन के टुकड़ों को गलने दिया। फिर अच्छे-से हिलाकर साबुन का गाढ़ा घोल बना लिया गया। घोल इतना गाढ़ा बनाया गया कि एक-तिहाई परखनली आसुत पानी में इसकी 5-10 बूँदें डालने पर खूब झाग बने।

इसी प्रकार से डिटर्जेंट का घोल भी बनाया गया। डिटर्जेंट की एक टिकिया को आधा बीकर आसुत पानी में घोल लिया गया। डिटर्जेंट का घोल भी गाढ़ा बन चुका था।

कुल मिलाकर, दो प्रकार के घोल तैयार हो चुके थे। एक साबुन का और दूसरा डिटर्जेंट का।

ज़रूरी सावधानियाँ

प्रयोग की सामग्री तैयार हो गई तो मास्साब ने कहा, "तो चलो, हम जिस भी जगह का पानी पीते हैं, पहले उसको जाँचते हैं। सबसे पहले हम स्कूल के पानी की जाँच करेंगे। जिस भी पानी की जाँच करनी होगी, उसे

परखनली में लेंगे और उसमें साबुन के गाढ़े घोल की बराबर-बराबर बूँदें डालेंगे। फिर देखेंगे कि कितना झाग बना है। प्रयोग करने के पहले कुछ सावधानियों की बात कर लेते हैं।" मास्साब ने कुछ सावधानियाँ बताईं जो *बाल वैज्ञानिक* में लिखी गई थीं–

1. तुलना के लिए पानी की बराबर-बराबर मात्रा ली जाए।
2. साबुन के घोल की बराबर-बराबर बूँदें डाली जाएँ।
3. तुलना करते समय, साबुन का घोल डालने के बाद पानी के हर नमूने को बराबर समय तक हिलाया जाए।

दरअसल, जो सावधानियाँ पुस्तक में लिखी गई थीं, उन्हीं को मास्साब ने सवालों के रूप में पूछा था। तुलना के लिए पानी की बराबर मात्रा लेना क्यों ज़रूरी है? जब मास्साब ने यह सवाल पूछा तो भागचन्द्र जवाब देने की कोशिश करने लगा, "मास्साब, अगर पानी की मात्रा बहुत-कम लेंगे तो रिज़ल्ट में गड़बड़ होगी। हमको साबुन भी बराबर मात्रा में लेनी पड़ेगी।"

अभी तो मास्साब ने पानी की बराबर मात्रा लेने को लेकर ही सवाल पूछा था। मगर बच्चों ने तो दूसरी सावधानी पर भी अपनी राय प्रस्तुत कर दी। मास्साब ने फिर से दोहराया, "भागचन्द्र ने सही कहा। हमको साबुन के घोल की बराबर बूँदें लेनी होंगी।

इस बात को भी याद रखा जाए। और जब साबुन का घोल डालकर हिलाया जाए, तो यह भी ध्यान में रखना है कि ऐसा न हो कि एक पानी के नमूने को दो मिनट तक हिलाएँ और दूसरे को कुछ ही सेकण्ड। लगभग बराबर ही हिलाया जाए। अगर बराबर समय तक न हिलाया तो झाग की मात्रा कम या ज़्यादा बन सकती है, और प्रयोग के नतीजे अलग हो सकते हैं।"

पानी के नमूनों की जाँच

सबसे पहले जो काम किया गया, वह यह कि दो परखनलियों को आसुत पानी से एक तिहाई भर लिया गया। अब एक में साबुन के घोल की पाँच बूँदें डालकर हिलाया गया। दूसरी परखनली में डिटर्जेंट के घोल की पाँच बूँदें डालकर हिलाया गया। इन दोनों परखनलियों पर लेबल

लगाकर रख दिया गया। मास्साब ने ज़ोर देकर कहा कि ये जो दोनों परखनलियों के आसुत जल में साबुन और डिटर्जेंट की पाँच-पाँच बूँदें डाली गई हैं, इनसे ही आगे तुलना करनी होगी।

स्कूल के हैंडपम्प से पानी लाया गया। टोलियों को स्कूल के हैंडपम्प का पानी बीकरों में परोसा गया। टोलियों में साबुन और डिटर्जेंट का गाढ़ा घोल भी दे दिया गया। साथ ही, ड्रॉपर भी आवश्यकतानुसार वितरित कर दिए गए। और फिर, स्कूल के हैंडपम्प के पानी की जाँच प्रारम्भ हो गई। सबसे पहले, दो परखनलियों में हैंडपम्प के पानी की बराबर मात्रा ली गई। एक परखनली पर 'क' और दूसरी पर 'ख' लिख दिया गया। 'क' परखनली में साबुन के घोल की पाँच बूँदें डाली गईं और 'ख' में डिटर्जेंट की पाँच बूँदें। दोनों को हिलाया गया। हिलाकर झाग की तुलना आसुत पानी वाली परखनलियों से की गई। बच्चों ने अपने-अपने अवलोकन तालिका में लिख लिए।

अब बारी थी प्रयोग के बाद की चर्चा की। वैसे प्रयोग का जितना महत्व है, उससे कहीं ज़्यादा प्रयोग से प्राप्त नतीजों के विश्लेषण के लिए की गई चर्चा का। इस लिहाज़ से प्रयोग करने के बाद, चर्चा के लिए, आगे का प्रयोग रोक दिया गया। स्कूल के हैंडपम्प के पानी के नमूने में साबुन से कितना झाग बना? इस पर

बच्चों ने फिर से अवलोकन किया। कक्षा में थोड़ी देर के लिए सन्नाटा छा चुका था। केशव ने सन्नाटे को भंग किया, "मास्साब, हैंडपम्प के पानी में साबुन से झाग तो बना, पर कम बना।"

"मतलब कि तुम आसुत पानी वाली परखनली की तुलना के आधार पर कह रहे हो?" मास्साब ने स्पष्टता लाने के लिए यह बात पूछी थी। दरअसल, कक्षा में यह बात ठीक-से समझ में आ चुकी थी कि हैंडपम्प के पानी में बने झाग की तुलना आसुत पानी वाली परखनली में बने झाग से करनी है। तभी इसरार बोल पड़ा, "डिटर्जेंट में झाग खूब बन रहा है।" "किसकी तुलना में?" यह इसरार की ही टोली से रघु ने पूछ लिया। मास्साब को लगा कि जो सवाल उन्हें पूछना था, वही रघु ने पूछकर उन्हें मुक्त कर दिया।

चूँकि सवाल रघु ने पूछा था इसलिए इसरार ने सवाल को ज़्यादा महत्व नहीं दिया। मास्साब ने जब

देखा कि इसरार उस सवाल को किनारे कर रहा है तो उन्होंने उसे टोका, "रघु के सवाल का जवाब क्या है?" अब की बार इसरार सचेत हो गया। रघु को एहसास हुआ कि उसने सही बात कही।

मास्साब ने फिर से पूछा, "क्या स्कूल के हैंडपम्प के पानी में डिटर्जेंट डालने पर आसुत जल में डिटर्जेंट के घोल से ज़्यादा झाग बन रहा है?"

वास्तव में, हैंडपम्प के पानी में डिटर्जेंट से बना झाग, साबुन की तुलना में काफी अधिक बन रहा था। जो इसरार भी कहना चाह रहा था, मगर तुलना तो आसुत पानी वाली परखनली में डिटर्जेंट से बने झाग के नमूने से करनी थी।

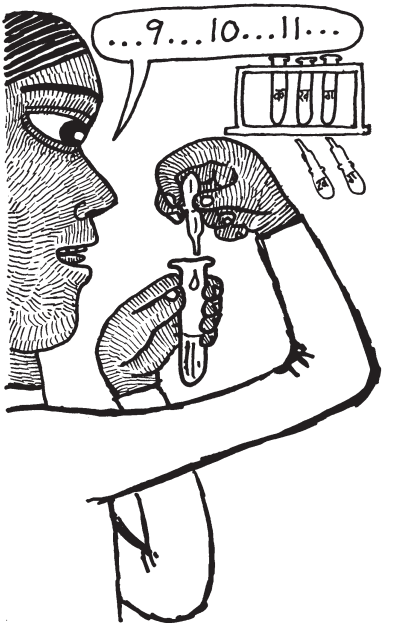

हैंडपम्प के पानी में, आसुत पानी में डिटर्जेंट के मुकाबले, डिटर्जेंट से तो उतना ही झाग बन रहा था, मगर साबुन में झाग कम बना था। इसी प्रकार बारी-बारी से अगले दिनों में बड़े कुएँ और टाँके के पानी की जाँच कर बच्चों ने अपने अवलोकन तालिका में लिख लिए। जब अवलोकनों के निष्कर्ष निकाले गए तो पाया गया कि सभी जगह के पानी में डिटर्जेंट और साबुन में तो खूब झाग बनता है, मगर केवल बड़े कुएँ के पानी में साबुन में सबसे कम झाग बना। टाँके के पानी में, साबुन में, सभी नमूनों की तुलना में ज़्यादा झाग बना। एक और अवलोकन की ओर ध्यान दिलाया गया – पानी के सभी नमूनों में डिटर्जेंट में झाग, आसुत पानी वाले डिटर्जेंट के मानक नमूने के बराबर ही बना। यह बात बच्चों को काफी दिलचस्प लगी कि डिटर्जेंट में झाग खूब बनता है। लगभग यही नतीजे सभी टोलियों के थे।

कुछ और प्रयोग

अभी भी वह प्रश्न अनुत्तरित ही था कि किस कारण से पानी में झाग की मात्रा कम या ज़्यादा होती है। झाग का दाल गलने या कपड़े साफ न धुलने से क्या लेना-देना है, इन सवालों के जवाब खोजने के लिए अब अगला प्रयोग किया जाना था।

अगले प्रयोग के लिए कुछ रसायनों की ज़रूरत थी। इन रसायनों को आसुत पानी में घोलकर, साबुन और डिटर्जेंट के घोल की निर्धारित बूँदें डालकर, झाग बनता है या नहीं, या झाग की मात्रा का पता लगाना था। अगले दिन ऐन वक्त पर मास्साब को याद आया कि प्रयोग के लिए कुछ रसायनों की ज़रूरत होगी। इधर पीरियड लग चुका था मगर प्रयोग करवाने के लिए रसायनों की व्यवस्था नहीं हुई थी। मास्साब हड़बड़ाहट में थे। वैसे कक्षा में जाने के पूर्व तैयारी का मामला अक्सर काफी कमज़ोर होता था। ऐसा बहुत ही कम होता कि शिक्षक कक्षा में जाने के पहले हर प्रकार से तैयार होकर जाते। खासकर स्कूली शिक्षा में, कक्षा में पढ़ाने जाने के पहले पूर्व-तैयारी की संस्कृति को विकसित करने के प्रयास भारत जैसे देश में काफी कम हुए हैं।

कक्षा से लौटकर मास्साब ने किट की अलमारी में रसायनों को टटोला। कुछ देर बाद, रसायनों की डिब्बियों को लेकर मास्साब कक्षा में पहुँच चुके थे। इस प्रयोग के लिए आसुत पानी की ज़रूरत थी जो कक्षा में ही रखा हुआ था।

मास्साब ने अध्याय से सम्बन्धित कुछ पूर्व की बातों को याद दिलाया। उन तीनों सावधानियों की बात एक बार फिर से की। उन्होंने बताया, "इस प्रयोग में हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि अगर पानी में झाग नहीं बनता है तो उसके कारण क्या हैं। यह तो तुम जानते ही हो कि आसुत पानी में किसी भी प्रकार की अशुद्धि नहीं होती है। तो यहाँ हम आसुत पानी में कुछ रसायनों को घोलेंगे।"

मास्साब ने छह रसायनों के घोल चार टोलियों के हिसाब से अलग-अलग बीकर में बना लिए। मास्साब ने रसायनों के नाम बोर्ड पर लिखे –

1. कैल्शियम क्लोराइड
2. सोडियम क्लोराइड
3. कैल्शियम सल्फेट
4. मैग्नीशियम सल्फेट
5. सोडियम कार्बोनेट
6. कैल्शियम बाईकार्बोनेट

मास्साब ने कहा कि ये सब लवण हैं। बच्चों को लवण का कुछ-कुछ अर्थ समझ में आ रहा था, बाकी इन छह नामों से वे पूरी तरह अनभिज्ञ थे। बच्चे एक-दूसरे का मुँह देख रहे थे। बहरहाल, मास्साब समझ चुके थे कि ये नाम बच्चों की समझ से कोसों दूर हैं, और इसलिए वे बच्चों की हिम्मत बँधाने की कोशिश कर रहे थे। "इन नामों से घबराने की ज़रूरत नहीं है। ये दूसरे नम्बर वाला जो 'सोडियम क्लोराइड' लिखा है, ये नमक है जो हम रोज़ खाते हैं।" इतना कहकर मास्साब रुक गए। बच्चों को थोड़ी राहत महसूस हुई। "बाकी के नामों से भी घबराने की ज़रूरत नहीं है। हम इनके 'काम' की बात करेंगे। 'नाम' के चक्कर में नहीं उलझेंगे।"

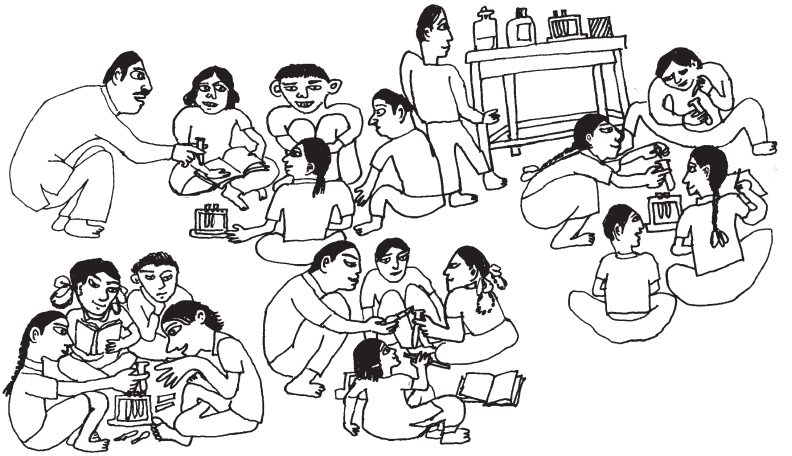

"तो अब मैं आपको इन छहों रसायनों के घोल आपकी टोलियों की परखनलियों में दूँगा। ये घोल आसुत पानी में बनाए गए हैं। परखनलियों पर इन घोलों का लेबल लगा लें।" मास्साब ने टोलियों में घोल बाँटना प्रारम्भ कर दिया। उसके बाद उन्होंने बोर्ड पर तालिका बना दी। बच्चे प्रयोग करने में जुट गए।

बच्चों ने प्रत्येक परखनली में साबुन के घोल की निर्धारित बूँदें डालीं और झाग की मात्रा का अवलोकन किया। इस के बाद, परखनली धोकर डिटर्जेंट के घोल की निर्धारित बूँदें डालीं और फिर से झाग का अवलोकन किया।

चर्चा से समझ की ओर

अवलोकन में यह बात समझ में आई कि डिटर्जेंट के साथ तो सभी में झाग बना मगर साबुन के घोल के साथ सभी में झाग बहुत कम या नहीं बना। जैसे कि कैल्शियम क्लोराइड, कैल्शियम सल्फेट और मैग्नीशियम सल्फेट के साथ साबुन डालने पर झाग न के बराबर बना।

तो साबुन के साथ दो प्रकार के अवलोकन आए। एक तो जिनमें साबुन के साथ झाग बना, और दूसरे वे, जिनमें झाग न के बराबर बना।

यहाँ बच्चे समूहीकरण की प्रक्रिया को एक बार फिर से अपना रहे थे। दो समूह बनाए गए - पानी में जिन रसायनों के साथ झाग बनता है और जिन रसायनों के साथ झाग नहीं बनता है।

"जिस पानी के साथ साबुन खूब झाग दे, उसे हम 'मृदु पानी' कहते हैं। और जो पानी कम झाग देता है

या झाग नहीं देता है, उसे 'कठोर पानी' कहते हैं।"

बच्चों को सोचने को बहुत कुछ मिल चुका था। नारंगी ने झट-से बात पकड़ ली। "अच्छा, तो अपने बड़े कुएँ का पानी 'मोटा' मतलब कि 'कठोर' है।" यह बात अक्सर नारंगी अपनी माँ के मुँह से सुनती रहती है कि 'कुएँ का पानी मोटा है'।

मास्साब ने बच्चों के साथ चर्चा की। अगर साबुन के साथ झाग न बने तो वह पानी कठोर होता है। और जिस पानी में झाग बने, वह पानी मृदु कहलाता है। आज बच्चों को पानी का मर्म कुछ हद तक समझ में आ चुका था।

...जारी

कालू राम शर्मा (1961-2021): अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, खरगोन में कार्यरत थे। स्कूली शिक्षा पर निरन्तर लेखन किया। फोटोग्राफी में दिलचस्पी। *एकलव्य* के शुरुआती दौर में धार एवं उज्जैन के केन्द्रों को स्थापित करने एवं मालवा में विज्ञान शिक्षण को फैलाने में अहम भूमिका निभाई।

सभी चित्र: कैरन हैडॉक: पिछले तीस सालों से भारत में शिक्षाविद, चित्रकार और शिक्षक के रूप में काम कर रही हैं। बहुत-सी चित्रकथाओं, पाठ्यपुस्तकों और अन्य पठन सामग्रियों का सृजन किया है और उनमें चित्र बनाए हैं।

सहजता को ढाँचे में बाँधना: सीखने में विरोधाभास?

राधा गोपालन

स्वतःस्फूर्त खोजबीन में अर्थपूर्ण सीखना काफी सरल प्रतीत हो सकता है। लेकिन क्या ढाँचाबद्ध स्थितियों में भी इस तरह का अचम्भा और जिज्ञासा जगा पाना सम्भव है? क्या इन दोनों के बीच सेतु बनाना सम्भव हो सकता है? हम सीखने के ऐसे सत्रों की रचना कैसे करें कि विद्यार्थियों को वैज्ञानिक अवधारणाओं की स्वतःस्फूर्त समझ विकसित करने में मदद मिले?

"सीखना वह मानवीय गतिविधि है जिसमें किसी दूसरे के हस्तक्षेप की आवश्यकता सबसे कम होती है। अधिकांश सीखना निर्देशों का परिणाम नहीं होता है। यह तो किसी अर्थपूर्ण गतिविधि में बेरोक भागीदारी का परिणाम होता है।"

–इवान इलीच

अधिकांश अर्थपूर्ण सीखना अपने प्राकृतिक परिवेश में डूबकर या फिर बागबानी, पशुओं की देखभाल या खाद्य उत्पादन जैसे वास्तविक अनुभवों में स्वतःस्फूर्त और सहज ढंग से जुड़कर सम्पन्न होता है। इस तरह की खोजबीन से गहरी जिज्ञासा और आश्चर्य के भाव का पोषण हो सकता

है। लेकिन क्या ढाँचाबद्ध स्थानों एवं स्थितियों में 12-13 वर्ष के बच्चों के लिए सीखने की ऐसी जगह बनाना सम्भव है? विशेष रूप से यदि वैज्ञानिक अवधारणाएँ और कौशल सीखना है, तो ऐसे स्थानों को किस हद तक ढाँचे में बाँधना होगा? क्या इस तरह की ढाँचाबद्धता अचरज के उस एहसास को समाप्त कर देगी जो स्वतःस्फूर्त और अनपेक्षित खोजों से उत्पन्न होता है? मिडिल स्कूल के विद्यार्थियों के एक समूह के साथ, उनके आसपास के जीवन की विविधता की खोजबीन को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से सीखने का सत्र तैयार करते समय, मैंने इन प्रश्नों का सामना किया।

सीखने के सत्रों की तैयारी

मेरे विद्यार्थी उपनगरीय क्षेत्रों के निवासी थे और स्थानीय सरकारी स्कूलों में पढ़ते थे। क्योंकि यह कोविड-19 लॉकडाउन के शुरुआती दिनों की बात है, इसलिए स्कूल परिसर और इसके प्राकृतिक परिवेश तक पहुँच सम्भव नहीं थी। जहाँ कुछ विद्यार्थियों को घरों के आसपास खुली जगह उपलब्ध थी, वहीं कुछेक के घरों में एक छोटा बगीचा था या फिर वे अपने घर की छत पर फूल और सब्ज़ियाँ उगाते थे। विद्यार्थियों के साथ मेरा जुड़ाव एक-एक दिन छोड़कर एक-एक घण्टे के छः ऑनलाइन सत्रों का रहा था। इन सत्रों के दो उद्देश्य थे –

(1) विद्यार्थियों को देखने, सूँघने, सुनने और स्पर्श की इन्द्रियों का उपयोग करके, अपने परिवेश के बारे में जानने के लिए प्रोत्साहित करना, और

(2) ध्यानपूर्वक अवलोकन के महत्व का अन्वेषण करना ताकि उनमें जागरूकता पैदा हो सके और वे अपने परिवेश में होने वाले परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील बन सकें।

जिस दिन हमारा कोई सत्र नहीं होता, उस दिन बच्चों को अपने परिवेश (घरों के भीतर या बाहर) की खोजबीन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता। इस खोजबीन की प्रक्रिया को खुला रखने और अनपेक्षित खोजों को मौका देने के लिए, इन दिनों के लिए निर्देश कम-से-कम रखे गए थे।

एक परिचय सत्र के बाद तीन और सत्र हुए जिनमें बाहर की खोजबीन पर ध्यान दिया गया – पौधों, पक्षियों, कीटों तथा बगीचे में, पत्तियों पर और गमलों वगैरह में जीवन के विभिन्न रूपों का अवलोकन। आखिरी के दो सत्रों में घर के अन्दर के जीवन की विविधता पर ध्यान केन्द्रित किया गया जिसमें मकड़ियों, बैग वर्म, चींटियों, तिलचट्टों और छिपकलियों का अवलोकन शामिल था। विद्यार्थियों को अपने अवलोकनों को रिकॉर्ड करने के लिए प्रोत्साहित

किया गया। इसमें या तो चीज़ों को देखकर, सुनकर (जैसे चिड़िया/ जीव-जन्तु/ कीटों की ध्वनि), सूँघकर या छूकर; चित्र-बनाकर उन्हें प्रस्तुत करना था या फिर एक पंजी तैयार करनी थी जिसमें प्रत्येक अवलोकन को उसकी तारीख और समय के साथ नोट किया गया हो। इसमें एक स्पष्ट निर्देश फोटो न लेने का था। इस निर्देश को इसलिए अपनाया गया ताकि विद्यार्थियों का पूरा ध्यान अपनी सारी इन्द्रियों के साथ अवलोकन की प्रक्रिया पर केन्द्रित हो सके।

आसपास के जीवन का अवलोकन

हमारे पहले सत्र के बाद विद्यार्थियों के कई सवाल थे: "यदि हम पौधों, पक्षियों या कीड़ों की पहचान नहीं कर पाए तो? हमें कितने पक्षियों या पौधों का अवलोकन करना है? हम पक्षियों की ध्वनियों का वर्णन कैसे करेंगे? यदि मुझे कोई पक्षी या कीड़ा नहीं दिखा तो? क्या मुझे पक्षियों को देखने के लिए सुबह जल्दी उठना पड़ेगा?" उनकी अधिकांश चिन्ताएँ इन बातों से सम्बन्धित थीं कि उन्हें क्या लिखना है और उनसे किस हद तक विवरण प्रदान करने की अपेक्षा की जाती है। कुछेक की यह चिन्ता थी कि उनका चित्रांकन कौशल 'बहुत बुरा' है। अन्य का यह विचार था कि वे उन कीड़ों और मकड़ियों जैसे जीवों का अवलोकन कैसे करेंगे जिनसे वे डरते हैं। मैंने जवाब दिया: "हमें खुद को एक मौका देना चाहिए, जो सम्भव हो, उसका अवलोकन करें। देखते हैं, क्या परिणाम निकलते हैं। हम अपने अवलोकनों को अगले सत्र में प्रस्तुत करेंगे और आपकी चिन्ताओं को हल करने का भी प्रयास करेंगे।"

दूसरे ऑनलाइन सत्र के दौरान, विद्यार्थियों ने अपने अवलोकनों का पहला सेट साझा किया। इन अवलोकनों में तालिकाबद्ध अवलोकनों (चित्र-1 देखें) के अलावा पक्षियों, फूलों के पौधे, पत्तियों, कीड़ों, पत्ती के आकार, रंग और शिरा विन्यास, पत्ती के किनारों और तनों पर पत्तियों की व्यवस्था (चित्र-2 देखें) के रंगीन चित्र देखने को मिले। कुछ विद्यार्थियों ने अपने अवलोकनों पर लघु निबन्ध लिखे थे। कुछ अन्य विद्यार्थियों ने पत्तियों, पेड़ों की छाल और गुबरैले के शरीर की सतह की बनावट को रिकॉर्ड करने के लिए स्पर्श इन्द्रियों का उपयोग किया। इस सत्र के अन्त में एक विशिष्ट निर्देश दिया गया। उनसे अवलोकन के प्रत्येक स्थान पर दिन में कम-से-कम तीन बार (सुबह, दोपहर, शाम) दोबारा जाने को कहा गया और निर्देश दिया गया कि प्रत्येक बार जाने पर कम-से-कम 15 मिनट तक उस स्थान का अवलोकन करें और अपने निष्कर्षों को रिकॉर्ड करें। इस प्रकार के 'ढाँचे' (विभिन्न समय पर अनेक अवलोकन) के उपयोग का उद्देश्य बच्चों को

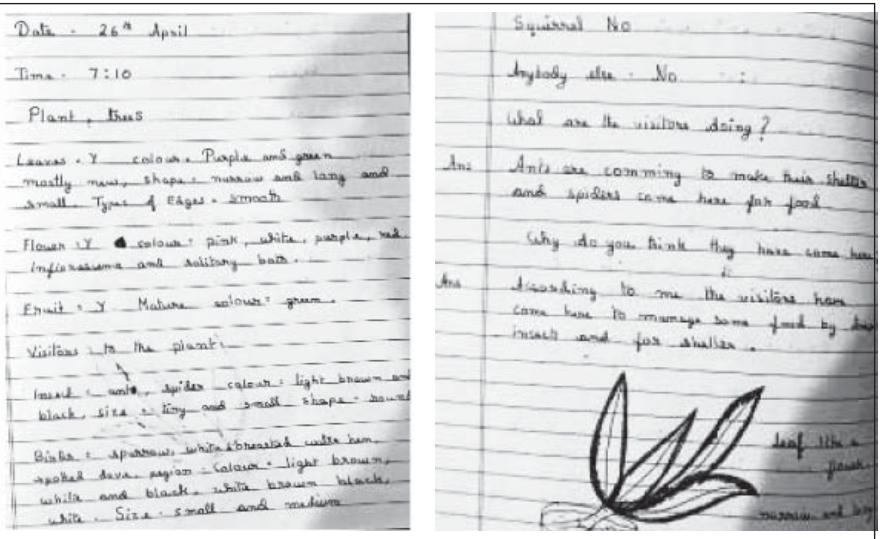
Date - 26th April

Time - 7:10

Plant - trees

Leaves - Y colour - Purple and green mostly new. shape - narrow and long and small. Types of Edges - smooth

Flower - Y colour - pink, white, purple, red. Inflorescence and solitary both.

Fruit - Y Mature colour - green.

Visitors to the plant -

Insect - ants, spider colour - light brown and black, size - tiny and small shape - round

Birds - sparrow, white breasted water hen, spotted dove, pigeon. Colour - light brown, white and black, white brown black, white. Size - small and medium

Squirrel - No

Anybody else - No

What are the visitors doing?

Ans: Ants are coming to make their shelters and spiders come here for food.

Why do you think they have come here?

Ans According to me the visitors have come here to manage some food by insects and for shelter.

leaf like

चित्र-1: *एक छात्र द्वारा दर्ज किया गया अवलोकन, रेखाचित्र।*

Date - 26th april, time - 7:10, Plant - trees.

Leaves - Colour: purple and green, mostly new. Shapes: narrow and long and small.

Types of edges: smooth.

Flower - Colour: pink, white, purple, red. Inflorescence and solitary both.

Fruits - mature, Colour: green.

Visitors to the plant - Insects: ants, spider. Colour: light brown and black. Size: tiny and small. Shape: round.

Birds: sparrow, white breasted waterhen, spotted dove, pigeon. Colour: light brown, white and black, white brown black, white. Size: small and medium.

Squirrel - No, Anybody else - No.

What are the visitors doing?

Ants are coming to make their shelters and spiders come here for food.

Why do you think they have come here?

According to me the visitors have come here to manage some food by insects and for shelter.

विस्तृत अवलोकन के तरीके सीखने में मदद करना और एक केन्द्रित और व्यवस्थित तरीके से पैटर्न और लय की तलाश करना था।

तीसरे और चौथे सत्र तक, कुछ विद्यार्थियों ने अपने अनुभवों को साझा करने के तरीकों में बदलाव किया और एकतरफा और प्रत्यक्ष अवलोकन से हटकर उन्होंने सवाल और टिप्पणियाँ करना शुरू किया: "मुझे इस बात का एहसास ही नहीं था कि तितलियाँ इतने अलग-अलग प्रकार

की होती हैं। वे लम्बे समय तक न केवल फूलों पर बैठती हैं बल्कि पत्तियों पर भी बैठती हैं। उन्हें पत्तियों से क्या प्राप्त होता है? पक्षी तारों पर क्यों बैठते हैं? हमें आम तौर पर पक्षी सुबह या शाम के समय ही क्यों दिखते हैं? दोपहर के समय वे क्या करते हैं? क्या उनके पास भी एक आन्तरिक घड़ी होती है? पक्षी केवल कुछ विशिष्ट पेड़ों पर ही क्यों जाते हैं? कीड़े छलावरण में कितने अच्छे होते हैं? मुझे इस बात का एहसास ही नहीं था कि ज़मीन के एक छोटे-से भाग में इतने विभिन्न प्रकार के कीड़े, विशेष रूप से चींटियाँ, हो सकते हैं। एक ही पौधे पर अलग-अलग रंग की पत्तियाँ क्यों होती हैं? पिछले कुछ दिनों में ही मुझे यह एहसास हुआ कि रात के समय भी काफी शोर होता है – क्या यह शोर कीड़ों का होता है या उल्लुओं का? मुझे इस बात का बहुत दुख है कि मैं अपने बगीचे में उपस्थित इस प्रकृति को अनदेखा कर रहा था। यदि एक छोटे-से बगीचे में इतना कुछ हो रहा है, तो सोचिए कि एक जंगल या समुद्र में क्या हो रहा होगा! पिछले कुछ दिनों में जो कुछ हमने किया है, क्या वह जीव विज्ञान का हिस्सा है? हम अपने स्कूल में पेड़, पक्षी, कीड़ों और कृमियों का अवलोकन करके जीव विज्ञान क्यों नहीं सीख सकते? हमारे लिए अपनी इन्द्रियों का उपयोग करना और अपने परिवेश के जीवन का निरीक्षण करना क्यों महत्वपूर्ण है?" एक समूह के रूप में जैसे ही हमने इन सवालों को समझने और चर्चा करने का प्रयास किया, एक विद्यार्थी ने अचानक से एक पक्षी की आवाज़ निकालना शुरू किया जिस पर वह काफी समय से महारत हासिल करना चाह रहा था ताकि हम सबके साथ साझा कर सके। वह बुलबुल की आवाज़ की बहुत अच्छी तरह से नकल कर रहा था।

आखिरी के दो सत्रों में खोजबीन की प्रक्रिया घर के अन्दर पहुँच गई और फिर से विद्यार्थियों को एक ही स्थान पर बार-बार जाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इसके नतीजे में सवालों और टिप्पणियों का एक नया पुलिन्दा सामने आया: "क्या हमें कीड़े-मकौड़ों को अपने घर में रहने देना चाहिए? मकड़ियाँ जाले कैसे बुनती हैं? क्यों कुछ मकड़ियाँ जाले बुनती हैं और अन्य बस इधर-उधर कूदती फिरती हैं? हमें अपने घरों के जालों को साफ नहीं करना चाहिए न? छिपकलियाँ वास्तव में काफी उपयोगी होती हैं; वे हमारे घरों से चींटियों को दूर रखती हैं। जब एक चींटी भोजन देखती है तो वह अन्य चींटियों से कैसे संवाद करती है? वे कितनी अनुशासित होती हैं! मेरे घर में छिपकली क्यों नहीं है?"

इन सवालों ने मकड़ियों पर बहस छेड़ दी, खासकर मकड़ियों के जाले के रेशम के संघटन और उनके

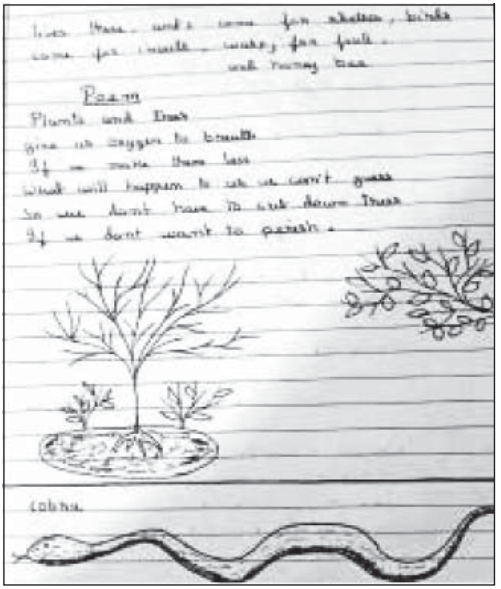

चित्र-2: *एक छात्र द्वारा लिखित कविता।*

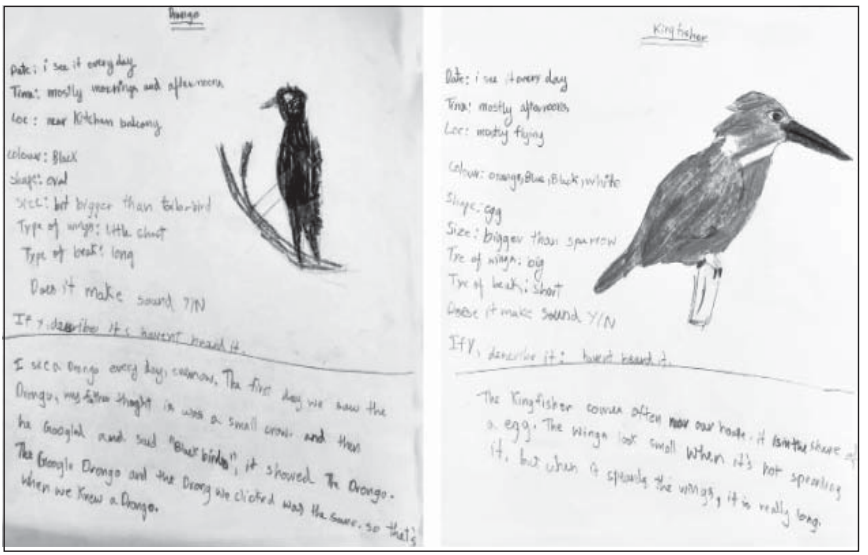

चित्र-3: *एक छात्र द्वारा अवलोकन किए गए पक्षियों के रेखाचित्र और विवरण।*

अण्डों की रक्षा करने, कीड़ों को पकड़ने एवं शिकार के उपकरण के रूप में इसके उपयोग को लेकर। सत्रों का समापन मिल-जुलकर रहने के विचार के साथ हुआ। विद्यार्थियों ने गौर किया कि जीवन हर जगह उपस्थित है, घर के बाहर भी और घर के अन्दर भी – इसे अपने आसपास महसूस करने के लिए उन्हें बस थोड़ा चौकन्ना रहना होगा।

सवालों से अवधारणाओं तक

प्रत्येक ऑनलाइन सत्र में जिन अवधारणाओं और परिघटनाओं की चर्चा की गई, उनका निर्धारण विद्यार्थियों द्वारा उठाए गए सवालों के आधार पर ही हुआ था। उदाहरण के तौर पर किसी पारिस्थितिकी तंत्र में पौधों, कीट और पक्षियों के बीच रिश्तों से सम्बन्धित प्रश्नों ने फूड वेब (खाद्य संजाल) के साथ-साथ छलावरण की घटना और शिकार-शिकारी सम्बन्धों में इसकी भूमिका पर चर्चा को प्रशस्त किया। परागण से सम्बन्धित सवालों ने कई फलों, सब्ज़ियों और नट्स सहित बड़ी संख्या में हमारे द्वारा सेवन किए जाने वाले खाद्य पदार्थों के उत्पादन में परागण की भूमिका पर चर्चा को आगे बढ़ाया। पेड़ों के फलने-फूलने जैसी जैविक घटनाओं के पैटर्न और लय से सम्बन्धित प्रश्नों ने ऋतु-जैविकी (फीनोलॉजी), पक्षियों की पुकार और आवाज़ों के बीच अन्तर और कई पक्षी प्रजातियों में नर और मादा के रूप-रंग पर एक परिचयात्मक चर्चा का आगाज़ किया। इन चर्चाओं को पूर्व-नियोजित या ढाँचाबद्ध करने की बजाय इस तरीके का उपयोग करने से हमें विभिन्न सम्बन्धित सिद्धान्तों को सामूहिक रूप से एक-साथ जोड़ने का मौका मिला।

क्या सहजता को ढाँचाबद्ध करना वास्तव में एक विरोधाभास है?

अक्सर देखा गया है कि सीखने के सत्र विशिष्ट विषयों जैसे पौधों, कीटों, सूक्ष्मजीवों, खाद्य शृंखलाओं और खाद्य संजाल आदि के आसपास गुँथे होते हैं। कक्षा में इन विषयों को प्रस्तुत करने के बाद, छात्र गतिविधियों को उनके पर्यावरण के विशेष पहलुओं पर केन्द्रित करने के लिए तैयार किया जाता है। जब विद्यार्थी परागण जैसे विषय के बारे में सीखने के बाद अवलोकन करते हैं तब उनका ध्यान एक घटना के रूप में परागण के अवलोकन तक ही सीमित रहता है। परिणामस्वरूप, उनके सवाल और सीखने के अनुभव शिक्षक की कल्पना से प्रेरित होते हैं और वहीं तक सीमित रहते हैं।

इसके विपरीत, विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर चुनिन्दा ढंग से ऑनलाइन सत्रों को रचने से विद्यार्थियों को स्वतःस्फूर्त अवलोकन करने और खोज का अनुभव करने का मौका मिलता है।

विशिष्ट बिन्दुओं पर ढाँचाबद्ध चर्चा करने से केन्द्रित एवं व्यवस्थित अवलोकन और गहन अन्वेषण की सम्भावना पनपती है – ये दोनों ही आसपास के पर्यावरण की सजगता पैदा करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। यह बात तीसरे और चौथे सत्र में स्पष्ट हो गई जब विद्यार्थियों के अवलोकन की प्रकृति में परिवर्तन आया। एक स्थान पर कई बार वापस जाने से उन्हें सम्बन्धों में बदलाव, पैटर्नों और लय का एहसास हुआ। उदाहरण के तौर पर, पौधों पर किए जाने वाले निरन्तर अवलोकनों ने विद्यार्थियों को कीड़ों और फूलों के बीच सम्बन्धों तथा दिन के अलग-अलग समय में विभिन्न फूलों के बीच कीटों की गतियों के पैटर्न के बारे में जिज्ञासा को बढ़ावा दिया। इस जिज्ञासा और जाँच-पड़ताल से पौधों और कीटों के बीच कई सम्बन्धों में से परागण की समझ भी उभरकर सामने आई। विद्यार्थियों ने कुछ इस तरह के सवाल उठाए: "कीड़े फूलों के पास क्यों आते हैं? वे एक ही पौधे के एक फूल से दूसरे फूल पर क्यों जाते हैं? कुछ कीड़े एक पौधे के फूल से दूसरे पौधे के फूल पर क्यों आते-जाते रहते हैं? क्या वे भोजन के लिए ऐसा करते हैं?" इन सवालों ने परागण और जलवायु परिवर्तन की चर्चा को जन्म दिया। चूँकि विद्यार्थी इन अवधारणाओं तक पाठ्यपुस्तकीय परिभाषा की बजाय अपने स्वयं के अनुभव से पहुँचे

सार

- अन्तर्क्रियात्मक सीखने में सहजता होती है तथा उत्सुकता और जिज्ञासा उत्पन्न होती है।
- विशिष्ट विषयों और अन्वेषणों के लिए तैयार किए गए सीखने के ढाँचाबद्ध अनुभव विद्यार्थियों की कल्पना और सीखने की क्षमता को सीमित कर सकते हैं।
- चुनिन्दा ढंग से ढाँचाबद्ध खुले सत्र एकाग्रता और गम्भीरता लाते हैं तथा जागरूकता और परिवर्तन के प्रति संवेदनशीलता का निर्माण करते हैं।
- रिकॉर्ड करने, उनसे निष्कर्ष निकालने और अवलोकनों से परिणाम प्राप्त करने जैसे न्यूनतम निर्देश देने से विद्यार्थियों में वैज्ञानिक विचारों की समझ समृद्ध हो सकती है।
- अवलोकन और सवाल पूछने के ज़रिए सीखने से विद्यार्थियों को सम्बन्धित वैज्ञानिक अवधारणाओं को अपने अनुभवों के आधार पर जोड़ने का मौका मिलता है।
- अर्थपूर्ण शिक्षा के लिए ढाँचाबद्धता और सहजता साथ-साथ रह सकते हैं। एक सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक अन्तर्क्रियात्मक सीखने का अनुभव प्रदान कर सकता है।

हैं, इसलिए इस तरीके ने सीखने के अधिक सक्रिय और समृद्ध अनुभवों की गुंजाइश दी।

इससे मुझे सीखने के दो अनुभवों में अन्तर के बारे में उत्सुकता हुई। एक चुनिन्दा ढंग से ढाँचाबद्ध सत्र विद्यार्थियों को अवलोकन करने, रिकॉर्ड करने, उसके परिणामों को समझने, सवाल करने एवं स्वयं के अवलोकनों से अनुमान लगाकर सीखने के लिए अपनी कल्पना और रचनात्मकता का उपयोग करने का मौका देता है। अपने स्वयं के अनुभवों से सीखने के बाद जब विद्यार्थी पाठ्यपुस्तकों या अन्य स्रोतों में इनके सम्पर्क में आते हैं तो यह उनकी अवधारणात्मक समझ को अधिक मज़बूत और समृद्ध करता है। यह तरीका उन्हें प्राकृतिक घटनाओं के आपसी सम्बन्ध और जुड़ाव को देखने का मौका देता है बजाय पाठ्यपुस्तक में इन्हें अलग-अलग विषयों के रूप में पढ़ने से। इस अनुभव ने मुझे विश्वास दिलाया कि अर्थपूर्ण शिक्षा के लिए ढाँचा और सहजता एक साथ अस्तित्व में रह सकते हैं। इसके साथ ही, एक शिक्षक एक सुगमकर्ता के रूप में सीखने के व्यापक अनुभव प्रदान करने में मदद कर सकता है।

राधा गोपालन: एक पर्यावरण वैज्ञानिक हैं, जिन्होंने भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी), बॉम्बे से पीएच.डी. प्राप्त की है। पर्यावरण परामर्श में 18 वर्ष के करियर के बाद उन्होंने ऋषि वैली एजुकेशन सेंटर में पर्यावरण विज्ञान पढ़ाया। वे स्कूल ऑफ डेवलपमेंट, अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी में विज़िटिंग फैकल्टी हैं। *आई-वंडर* पत्रिका के सम्पादकों में से एक और कुडाली इंटरजनरेशनल लर्निंग सेंटर, तेलंगाना की सदस्य हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवादक: ज़ुबैर सिद्दीकी: *स्रोत* पत्रिका, *एकलव्य* से सम्बद्ध हैं।

यह लेख *आई-वंडर* पत्रिका के अंक जून 2021 से साभार।

पृथ्वी की विगत जलवायु के बारे में आप जो कुछ भी जानना चाहते हैं

ये हमारे भविष्य के बारे में बहुत कुछ बता सकते हैं

रेचल ई. ग्रोस्स

साइलेंट स्प्रिंग नामक किताब में, रेचल कार्सन, पश्चिमी सेजब्रश (तेजपत्ता जैसा पौधा) का ज़िक्र करती हैं। वे लिखती हैं, "यहाँ का प्राकृतिक परिदृश्य, उसको रचने वाले बलों की अन्तर्क्रिया की अभिव्यक्ति है। यह हमारे सामने एक खुली किताब के पन्नों की तरह फैला हुआ है, जिसे हम पढ़ सकते हैं, एवं ऐसे सवालों का उत्तर ढूँढ़ सकते हैं कि ज़मीन जैसी है वैसी क्यों है, क्यों हमें उसकी निरन्तरता का संरक्षण करना चाहिए? लेकिन इन पन्नों को अभी पढ़ा नहीं गया है।" एक विलुप्त होने वाले, खतरे में पड़े परिदृश्य का उन्हें दुख है। पर उतने ही स्वाभाविक तौर पर ये कथन पुराजलवायु (paleoclimate) के संकेतकों पर भी लागू होते हैं।

यह जानने के लिए कि आप कहाँ जा रहे हैं, आपको यह जानना होगा कि आप कहाँ से आए हैं। जलवायु वैज्ञानिकों के लिए यह विशेष रूप से ज़रूरी है कि वे पृथ्वी में होने वाले बदलावों की पूरी शृंखला की समझ बनाएँ ताकि हमारे भविष्य के मार्ग का लेखा-जोखा तैयार किया जा सके। लेकिन टाइम मशीन के बिना, उन्हें इस तरह का डेटा कैसे मिल सकता है?

कार्सन की तरह, उन्हें पृथ्वी के पन्नों को पढ़ना होगा। सौभाग्य से, पृथ्वी ने डायरी रखी है। महासागर में कोरल, गुफा में चूना पत्थर के आरोही निक्षेप (स्टेलेगमाइट), लम्बे समय तक जीवित रहने वाले पेड़, कवचधारी सूक्ष्म समुद्री जीव, इन सभी में वार्षिक परतें जुड़ती रहती हैं और इनमें बहुत विश्वासपूर्ण तरीके से अतीत की स्थितियाँ दर्ज होती हैं। गहराई से अध्ययन करने हेतु वैज्ञानिकों ने कभी तलछट (सेडिमेन्ट) कोर और कभी आइस कोर को टटोला है, तो कभी महासागर के तल और बर्फीले ध्रुवों को। ये सब राख एवं धूल और लम्बे समय से फँसे गैस के बुलबुलों में अपने संस्मरण लिखते हैं।

अतः एक अर्थ में, हमारे पास टाइम मशीन हैं: प्रत्येक उदाहरण एक अलग कहानी बताता है, जिसे वैज्ञानिक पृथ्वी के अतीत की अधिक सम्पूर्ण समझ बनाने के लिए एक साथ बुन सकते हैं।

मार्च 2018 में, स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूशन के नेशनल म्यूज़ियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री ने पृथ्वी के तापमान के इतिहास पर तीन दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया था जिसके दौरान शिक्षकों, पत्रकारों, शोधकर्ताओं और जनता को एक मंच पर मिलकर पुराजलवायु की अपनी समझ को बढ़ाने का मौका मिला। व्याख्यान के दौरान, एक शाम, जलवायु के मॉडल तैयार करने वाले और नासा के गोडार्ड इंस्टीट्यूट फॉर स्पेस स्टडीज़ के निदेशक, गेविन श्मिड्ट, और पेंसिल्वेनिया स्टेट यूनिवर्सिटी के विश्व प्रसिद्ध भूवैज्ञानिक रिचर्ड एले ने बताया, किस प्रकार पृथ्वी के अतीत की जलवायु की जानकारी का उपयोग करके वैज्ञानिक भविष्य की जलवायु से सम्बन्धित भविष्यवाणी करने के लिए उपयोगी मॉडल बनाते हैं व उनको बेहतर करने का प्रयास करते हैं।

इस सन्दर्भ में पृथ्वी की जलवायु के इतिहास सम्बन्धी गाइड साझा कर रहे हैं - यह आपको न केवल हम जो जानते हैं, बल्कि हम इसे कैसे जानते हैं, इससे भी रूबरू कराएगी।

? प्रश्न - हम पृथ्वी के अतीत की जलवायु का पता कैसे लगाते हैं?

पृथ्वी के पिछले अवतारों को फिर से संगठित एवं संकल्पित करने में थोड़ी रचनात्मकता लगती है। सौभाग्य से, वैज्ञानिक प्रमुख प्राकृतिक कारकों को पहचानते हैं जो जलवायु को आकार देते हैं। इन कारकों में ज्वालामुखी से निकलने वाली राख जो सूर्य को अवरुद्ध करती है, पृथ्वी की कक्षा में परिवर्तन जिससे सूर्य की रोशनी विभिन्न अक्षांशों पर बदलती है, महासागरों और समुद्री बर्फ का संचलन, महाद्वीपों के खाके में बदलाव, ओज़ोन छिद्र के आकार में बदलाव, ब्रह्माण्डीय किरणों का विस्फोट, ग्रीनहाउस गैसें और वनों की कटाई जैसी प्रक्रियाएँ शामिल हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण हैं कार्बन डाइऑक्साइड और मीथेन जैसी ग्रीनहाउस गैसें, जो सूर्य की गर्मी को संरक्षित यानी ट्रेप करती हैं।

जैसा कि कार्सन ने उल्लेख किया है, पृथ्वी अपने परिदृश्यों में इन परिवर्तनों को दर्ज करती है: भूगर्भीय परतों, वृक्षों एवं सीप के जीवाश्म, यहाँ तक कि चूहे की क्रिस्टलीकृत पेशाब में भी - वास्तव में, मूल रूप से कुछ भी प्राचीन जो संरक्षित हो जाता है, वह पृथ्वी की डायरी का रूप ले लेता है। वैज्ञानिक प्राचीन समय की ऐसी डायरी के पन्नों को खोल सकते हैं और उनमें पढ़ सकते हैं कि उस समय क्या चल रहा था। पेड़ों के वार्षिक वलय अत्यन्त व्यवस्थित रिकॉर्ड रखते हैं, उनके वार्षिक वलयों में वर्षा की रिकॉर्डिंग होती है। आइस कोर तो लगभग 10 लाख वर्षों तक की पुरानी मौसमी परिस्थितियों का विस्तृत विवरण संजो के रखती है।

चित्र-1: *आइस कोर बर्फबारी, ज्वालामुखीय राख की वार्षिक परतों, और यहाँ तक कि लम्बे समय से मृत सभ्यताओं के अवशेषों को प्रकट करती हैं।*

? प्रश्न - आइस कोर हमें और क्या बता सकती है?

"वाह! बहुत कुछ," एले कहते हैं। उन्होंने पाँच फील्ड सीज़न तक ग्रीनलैंड की बर्फ की चादर से आइस कोर (बर्फ के बेलनाकार टुकड़े) निकालकर अध्ययन किया है। वास्तव में, एक आइस कोर क्या है: हज़ारों वर्षों से हो रही बर्फबारी की परतों की एक अनुप्रस्थ काट।

जैसा कि दोनों शोधकर्ता केटलीन कीटिंग-बिटोंटी और लुसी चैंग लिखती हैं, 'जब गिरती हुई बर्फ यानी स्नोफ्लेक्स ज़मीन को ढँकती है, तो इसमें वायुमण्डलीय गैसों से भरे सूक्ष्म वायु-अवकाश (air cavities) कैद हो जाते हैं। ध्रुवों पर, पुरानी परतें दफन हो जाती हैं और दबकर संकुचित होने से, अतीत की हवा के ये अवकाश बुलबुलों का रूप ले लेते हैं' वैज्ञानिक, बर्फ की रासायनिक संरचना का उपयोग कर (H_2O में ऑक्सीजन के भारी और हल्के समस्थानिकों के अनुपात की मदद से), तापमान का अनुमान लगाते हैं। ग्रीनलैंड और अंटार्कटिका में, एले जैसे वैज्ञानिक अकल्पनीय रूप से लम्बे बर्फ के टुकड़े निकालते हैं - जिनमें से कुछ तो दो मील से अधिक लम्बे होते हैं!

आइस कोर हमें बताती हैं कि किसी विशेष वर्ष के दौरान कितनी बर्फ गिरी थी। सिर्फ यही नहीं, वे धूल, समुद्री नमक, दूर के विस्फोटों से ज्वालामुखी की राख, और यहाँ तक कि रोमन नलसाज़ी (प्लम्बिंग) द्वारा छोड़े गए

प्रदूषण को भी प्रकट करती हैं। एले कहते हैं, "जो कुछ भी हवा में है, तो वह बर्फ में भी है।" सर्वोत्तम स्थितियों में, हम आइस कोर डेटिंग से सटीक मौसम और वर्ष तक का पता लगा सकते हैं। उनके वार्षिक वलयों की तुलना किसी वृक्ष के वार्षिक वलयों से की जा सकती है। ऐली के अनुसार, आइस कोर, पुराजलवायु के प्रतिरूपों (proxies) के 'स्वर्ण मानक' हैं क्योंकि वे सैकड़ों हज़ारों वर्षों से चले आ रहे अनूठे विवरणों को सुरक्षित रखते हैं।

? रुकिए, लेकिन क्या पृथ्वी का इतिहास इससे भी पुराना नहीं है?

हाँ, यह सही है। पुराजलवायु वैज्ञानिकों को लाखों या करोड़ों साल पीछे जाने की ज़रूरत है - और इसके लिए हमें आइस कोर से भी पुरानी चीज़ों की ज़रूरत होगी। सौभाग्य से, सजीव जीवन का एक लम्बा रिकॉर्ड है। जटिल जीवन का जीवाश्म रिकॉर्ड लगभग 60 करोड़ वर्ष पुराना है। इसका मतलब यह है कि हमारे पास जलवायु परिवर्तन के लिए निश्चित प्रतिरूप हैं जो हमें इस प्राचीन समय तक पहुँचा सकते हैं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण है कोनोडॉण्ट (विलुप्त, ईल जैसी मछली) के दाँत, जो लगभग 52 करोड़ वर्ष पुराने हैं।

लेकिन इस समयसीमा के कुछ सबसे आम जलवायु प्रतिरूप और अधिक सूक्ष्म हैं। फोरामिनिफर/फोरम्स और डायटम, किसी बिन्दु जितने बड़े, एककोशिकीय प्राणी हैं जो अक्सर महासागरों के तल पर रहते हैं। क्योंकि वे पूरी पृथ्वी पर बिखरे हुए हैं और जुरासिक समय से पाए जाते हैं, वे वैज्ञानिकों के लिए पुरातन तापमान की जाँच करने के लिए एक सशक्त

चित्र-2: कोनोडॉण्ट जीवाश्म: *महासागरों में 30 करोड़ से अधिक वर्षों तक मौजूद रहे, कैम्ब्रियन से जुरासिक समय की शुरुआत तक। ये जीवाश्म प्राचीनतम काल को परिभाषित करने और पहचानने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।*

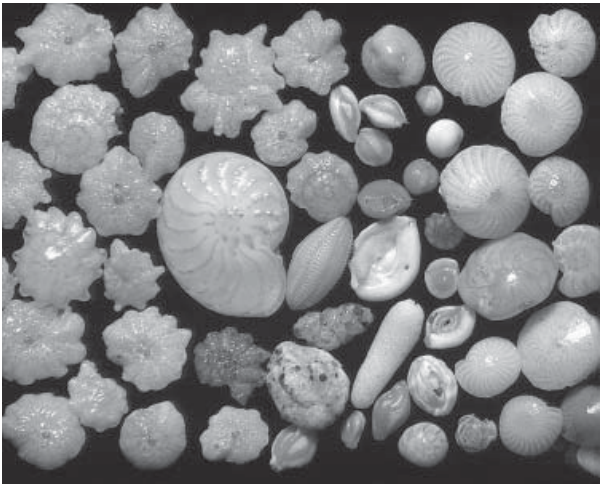

चित्र-3: फोरामिनीफेरा *को 'बख़्तरबन्द अमीबा' कहा गया है क्योंकि वे आम तौर पर लगभग आधा और एक मिलीमीटर के बीच होते हैं और एक छोटे-से खोल का स्राव करते हैं।*

जीवाश्म रिकॉर्ड साबित होते हैं। उनके आवरण में ऑक्सीजन समस्थानिकों का उपयोग करके हम 10 करोड़ से भी अधिक साल पहले के महासागर के तापमान का पुनर्निर्धारण कर सकते हैं।

कार्सन ने लिखा था, "हर उत्क्षेपित अन्तरीप (ज़मीन से निकली हुई चट्टान) में, हर समुद्री तट के मुड़ते हुए किनारे में, रेत के हर दाने में धरती की कहानी है।" ऐसी कहानियाँ रेत के दाने से भी छोटे जीवों में और समुद्र के तटों को बनाने वाले पानी में भी छुपी हुई हैं।

? प्रश्न - हमारे अतीत के बारे में हम कितनी निश्चितता से बता सकते हैं?

पुराजलवायु वैज्ञानिकों के लिए, जीवन महत्वपूर्ण है: यदि आपके पास पृथ्वी पर जीवन के संकेतक हैं, तो आप जीवों के वितरण के आधार पर तापमान की व्याख्या कर सकते हैं।

लेकिन जब हम इतने पीछे चले जाएँ कि किसी कोनोडॉण्ट के दाँत भी नहीं हों, तो हम अपना प्रमुख संकेतक खो देते हैं। प्रमुख संकेतक न होने पर हम सिर्फ तलछट के वितरण और अतीत के हिमनदों के संकेतकों का एक्सट्रापोलेशन कर जलवायु पैटर्न को दर्शा सकते हैं। हम जितना पीछे जाते हैं, हमारे पास उतने ही कम साक्ष्य उपलब्ध होते हैं और हमारी समझ भी उतनी ही कम बन पाती है। स्मिथसोनियन पेलियो-बायोलॉजिस्ट यानी जीवाश्म जीवविज्ञानी ब्रायन ह्यूबर, कहते हैं, "जैसे-जैसे साक्ष्य कम होते जाते हैं, जलवायु पैटर्न का चित्र धुँधला और धुँधला होता जाता है।" ब्रायन

ने स्मिथसोनियन म्यूज़ियम में इस संगोष्ठी को आयोजित करने में साथी स्कॉट विंग की मदद की थी। स्कॉट विंग जीवाश्म अनुसंधान वैज्ञानिक और स्मिथसोनियन संग्रहालय के क्युरेटर हैं।

? प्रश्न - ग्रीन हाउस गैसों के महत्व को प्रदर्शित करने में पुराजलवायु क्या भूमिका निभाता है?

ग्रीनहाउस गैसें, जैसा कि उनके नाम से पता चलता है, ताप को बनाए रखती हैं। यह प्रमुख रूप से पृथ्वी पर ताप का कुचालक आवरण बनाती हैं। यदि आप पिछले आइस एज के ग्राफ का अध्ययन करें, तो आप देख सकते हैं कि CO_2 के स्तर और आइस एज (या वैश्विक तापमान) संरेखित हैं। अधिक CO_2 गर्म तापमान और कम बर्फ के समानुपाती है और कम CO_2 इसके विपरीत। "और हमें यहाँ कार्य-कारण की दिशा पता है," एले बताते हैं। "वातावरण में CO_2 बढ़ेगी तो बर्फ कम बनेगी, कम बर्फ बनने से CO_2 की मात्रा वायुमण्डल में नहीं बढ़ती। यानी उलटा सही नहीं है।"

हम विशिष्ट समयकाल का भी अध्ययन कर सकते हैं ताकि यह देखा जा सके कि CO_2 का स्तर अधिकतम कब-कब हुआ और उसके प्रति पृथ्वी की क्या प्रतिक्रिया रही। उदाहरण के लिए, पृथ्वी के सेनोज़ोइक समयकाल, यानी लगभग 5.59 करोड़ वर्ष पूर्व के समय में, अत्यधिक गर्मी के दौरान, वातावरण में CO_2 की मात्रा को दोगुना करने के लिए पर्याप्त कार्बन मुक्त हुआ था। परिणामस्वरूप गर्म परिस्थितियों ने कहर बरपाया, जो जीवों के बड़े पैमाने पर पलायन करने और विलुप्त होने का कारण बना; लगभग हर प्राणी या तो विलुप्त हो गया, या फिर प्रवास कर गया। पौधे सूख गए और महासागर का पानी अम्लीय और काफी गरम हो गया।

दुर्भाग्य से, अब हम जहाँ जा रहे हैं, उसके लिए यह अनुभव एक अग्रदूत साबित हो सकता है। ह्यूबर कहते हैं, "यह जलवायु मॉडलर्स के लिए डरावना है। जिस दर से हम बढ़ रहे हैं, हम अत्यधिक तापमान वाले उन युगों की ओर लौट रहे हैं जब पृथ्वी गरम हुई थी।" अतः, पिछले जलवायु परिवर्तन में कार्बन डाइऑक्साइड की भूमिका को समझने से, हमें आगे होने वाले जलवायु परिवर्तन की भविष्यवाणी करने में मदद मिलती है।

? प्रश्न - यह तो बहुत भयावह हो सकता है।

जी हाँ।

? प्रश्न - मैं वास्तव में इस बात से प्रभावित हूँ कि हमारे पास बहुत सारा पुराजलवायु डेटा है। लेकिन जलवायु के मॉडल काम कैसे करते हैं?

यह बड़ा अच्छा सवाल है! विज्ञान में, आप तब तक एक मॉडल नहीं बना

सकते जब तक आप किसी तंत्र में अन्तर्निहित बुनियादी सिद्धान्तों को नहीं समझते हैं। तो मात्र यह तथ्य कि हम अच्छा मॉडल बनाने में सक्षम हैं, का मतलब है कि, हम समझते हैं कि यह सब कैसे काम करता है। एक मॉडल अनिवार्य रूप से वास्तविकता का एक सरलीकृत संस्करण है, जो भौतिकी और रसायन विज्ञान के नियमों के बारे में उपलब्ध ज्ञान पर आधारित है। इंजीनियर गणितीय मॉडलों का उपयोग कर कई संरचनाओं जैसे हवाई जहाज़ से लेकर पुलों तक, का निर्माण करते हैं जिनपर लाखों लोग निर्भर करते हैं।

हमारे मॉडल डेटा के ऐसे ढाँचे पर आधारित हैं, जिसे पुराजलवायु का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों ने लम्बे समय से दुनिया के हर कोने से पुराजलवायु प्रतिरूपों का अध्ययन कर एकत्रित किया है। इसलिए यह ज़रूरी है कि डेटा और मॉडल का एक-दूसरे से सम्बन्ध और विनिमय हो। सुदूर अतीत के डेटा का उपयोग करके, वैज्ञानिक अपनी भविष्यवाणियों की परीक्षा लेते हैं, और जो भी विसंगतियाँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें ठीक करने का प्रयास करते हैं। श्मिड्ट कहते हैं, "भविष्य में क्या होगा, इसके बारे में बेहतर भविष्यवाणी करने के लिए हम अतीत में इन मॉडलों के निष्कर्षों की जाँच और परीक्षण कर सकते हैं।"

इसी तरह का एक मॉडल नीचे दर्शाए गए चित्र में दिया गया है।

? प्रश्न - यह सुन्दर है। हालाँकि, मैंने सुना है कि मॉडल बहुत सटीक नहीं होते।

उनकी प्रकृति और परिभाषा में ही निहित है कि मॉडल हमेशा गलत होते हैं। हम उन्हें हमारे सबसे अच्छे अनुमान के रूप में सोच सकते हैं। लेकिन अपने आप से पूछें: क्या ये अनुमान हमें पहले की तुलना में अधिक जानकारी देते हैं? क्या वे उपयोगी भविष्यवाणियाँ प्रदान करते हैं जो हम अन्यथा प्राप्त नहीं कर पाते? क्या वे हमें नए, बेहतर सवाल पूछने में मदद करते हैं? श्मिड्ट कहते हैं, "जैसे ही हम जानकारी के इन सभी टुकड़ों को एक साथ रखते हैं, हम कुछ ऐसा पाते हैं जो बहुत हद तक हमारे ग्रह जैसा

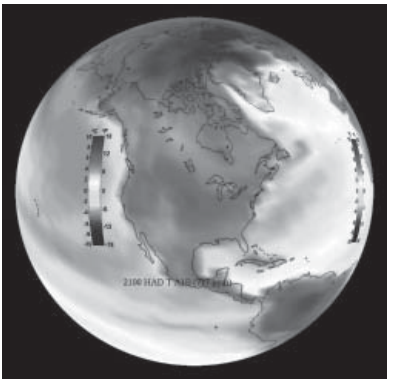

चित्र-4: *जलवायु मॉडल: तापमान परिवर्तन (हेडले a1b) 2100*

दिखता है। हम जानते हैं कि यह मॉडल अधूरा है। हम जानते हैं कि इसमें कुछ ऐसी चीज़ें हैं जिन्हें हमने शामिल नहीं किया है। हम जानते हैं कि हमने कुछ ऐसी चीज़ों को शामिल किया है जो थोड़ी गलत हैं। लेकिन, इन मॉडलों में हम जो बुनियादी पैटर्न देखते हैं, वह पहचानने योग्य होते हैं... उन पैटर्न्स की तरह जिन्हें हम हर समय उपग्रहों के ज़रिए देखते हैं।

? प्रश्न - तो हमें भविष्यवाणी करने के लिए उन पर भरोसा करना चाहिए?

मॉडल पृथ्वी के अतीत, वर्तमान और कुछ मामलों में, भविष्य में हमारे द्वारा देखे जाने वाले पैटर्न्स को विश्वासजनक रूप से पुनः पेश करते हैं। अब हम ऐसे समय में हैं जब हम जलवायु के शुरुआती मॉडल की तुलना वास्तविकता से कर सकते हैं। ऐसे मॉडल जो 1980 के दशक के अन्त और 1990 के दशक में नासा में श्मिड्ट की टीम ने तैयार किए थे, उन्हें वास्तविकता से तोला जा सकता है। एले कहते हैं, "जब मैं एक छात्र था, तो शुरुआती मॉडलों ने हमें बताया था कि हमारा ग्रह गर्म कैसे होगा। यही हो रहा है। मॉडल सफलतापूर्वक भविष्यवाणी करने के साथ-साथ व्याख्यात्मक भी हैं: वे काम करते हैं।" आप किस पाले में हैं, उसके आधार पर हो सकता है कि आप कहें, "ओह अच्छा! हम सही थे।" या "ओह, नहीं! हम सही थे।"

मॉडल की सटीकता की जाँच करने के लिए, शोधकर्ता उस डेटा पर वापस जाते हैं जो एले और अन्य लोगों ने एकत्र किया है। मॉडल सुदूर अतीत में लागू किए जाते हैं, और उनकी तुलना उन आँकड़ों से की जाती है जो वास्तव में शोधकर्ताओं के पास हैं।

सिराक्यूज़ विश्वविद्यालय की एक जीवाश्म वैज्ञानिक लिंडा इवनी कहती हैं, "यदि कोई मॉडल प्राचीन अतीत की जलवायु को पुनः प्रस्तुत करने में अच्छा है, तो वह मॉडल भविष्य में क्या होने वाला है, इसका अनुमान लगाने के लिए भी एक अच्छा उपकरण साबित होगा।" इवनी के अनुसन्धान का प्रतिरूप प्राचीन सीप हैं, जिनके शंख में न केवल वार्षिक परिस्थितियों का, बल्कि 30 करोड़ वर्ष पूर्व की हर सर्दी और गर्मी की ऋतुओं के रिकॉर्ड हैं - ये किसी मॉडल की जाँच करने का एक महत्वपूर्ण ज़रिया साबित होते हैं। वे कहती हैं, "मॉडल जितने बेहतर रूप से अतीत की परिस्थिति दर्शा पाएँगे, वे भविष्य का अनुमान भी उतनी ही सटीकता से दे पाएँगे।"

? प्रश्न - पुराजलवायु हमें दिखाती है कि समय के साथ-साथ पृथ्वी की जलवायु नाटकीय रूप से बदल गई है। एक सापेक्ष अर्थ में, क्या इसका मतलब यह है कि आज के बदलाव कोई बड़ी बात नहीं हैं?

जब रिचर्ड एले मानव निर्मित जलवायु परिवर्तन की गम्भीरता की व्याख्या

करने की कोशिश करते हैं, तो वे अक्सर एक विशेष वार्षिक घटना का उल्लेख करते हैं: हर वर्ष लॉस एंजिल्स की पहाड़ियों पर धधकने वाले दावानल। यह आग पूर्वानुमेय, चक्रीय, और प्राकृतिक है। चूँकि आग लगना स्वाभाविक है, इसका मतलब यह नहीं कि आगजनी करने वाले लोगों द्वारा आग लगाई जाना सही है। इसी तरह, यह तथ्य कि जलवायु लाखों वर्षों में बदल गई है, इसका मतलब यह नहीं है कि मानव निर्मित ग्रीनहाउस गैसें एक गम्भीर वैश्विक खतरा नहीं हैं।

विंग कहते हैं, "हमारी सभ्यता स्थिर जलवायु और समुद्री सतह पर आधारित है। और अतीत से हम जो कुछ भी जानते हैं, उससे पता चलता है कि जब आप बहुत मात्रा में कार्बन वातावरण में डालते हैं, तो जलवायु और समुद्र का स्तर व्यापक रूप से बदलता है।"

औद्योगिक क्रान्ति के बाद से, मानव गतिविधियों ने दुनिया को 2 डिग्री फेरन्हाइट गर्म किया है, जिसे श्मिड्ट एक 'आइस एज यूनिट' का एक-चौथाई मानते हैं। एक आइस एज यूनिट, पृथ्वी के एक हिम युग और एक गैर-हिम युग से गुज़रने में तापमान परिवर्तन का मापदण्ड है। आज के मॉडल द्वारा अनुमान लगाया जा सकता है कि 22वीं सदी (2100) तक पृथ्वी का तापमान 2 से 6 डिग्री सेल्सियस बढ़ सकता है। पिछले 20 लाख वर्षों में गर्मी बढ़ने की दर से यह 20 गुना ज़्यादा है। यानी पुरातन समय के मुकाबले में यह अत्यन्त तेज़ी-से बढ़ रहा है।

यह ज़रूर है कि अनिश्चितताएँ हैं: एले का कहना है, "हम इस बारे में बहस कर सकते हैं कि क्या हम कुछ ज़्यादा आशा (निराशा) वादी तो नहीं हो रहे हैं, लेकिन इस बारे में ज़्यादा बहस नहीं हो सकती है कि क्या हम बहुत डरे हुए हैं या नहीं। यह देखते हुए कि हम पहले कितने सही थे, हम अपने जोखिम पर ही जलवायु के इतिहास को नज़रअन्दाज़ कर सकते हैं।

रेचल ई. ग्रोस्स: विज्ञान सम्पादक हैं जो नई खोजों और बहसों की ऐसी कहानियों पर काम करती हैं जो दुनिया के बारे में हमारी समझ को पुख्ता करती हैं। स्मिथसोनियन से पहले उन्होंने *स्लेट, वायर्ड* और *द न्यूयॉर्क टाइम्स* के लिए विज्ञान रिपोर्टर के रूप में काम किया है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: स्निग्धा दास: पाँच साल *एकलव्य* के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़ी रहीं। पिछले 11 सालों से विद्या भवन एजुकेशन रिसोर्स सेंटर, उदयपुर के साथ काम कर रही हैं।

यह लेख smithsonianmag.com के अंक अप्रैल 16, 2018 से साभार।

पढ़ना सिखाने की गाड़ी एक ही पहिये पर चलाना

मीनू पालीवाल

सन् 2017 में एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा 'सीखने के प्रतिफल'* नाम का दस्तावेज़ विकसित किया गया। इसे विकसित करने का प्रमुख कारण इस तरह व्यक्त किया गया है, 'शिक्षकों में इसकी स्पष्टता का अभाव है कि किस प्रकार का सीखना आवश्यक है और वे कौन-से मापदण्ड हैं जिनसे इसे मापा जा सकता है।

किस प्रकार का सीखना आवश्यक है, इसकी अस्पष्टता कक्षा 1 और 2 में पढ़ना सिखाने के तरीकों को देखकर साफ तौर से समझ में आती है। इन कक्षाओं के बच्चे जब तक सारे अक्षर और मात्रा नहीं सीख जाते तब तक उन्हें पढ़ने के लिए किताबें या कहानियाँ नहीं दी जातीं। कक्षा 1 और 2 के लिए कुल 14 प्रतिफल चिह्नित हैं। इनमें से एक प्रतिफल है, बच्चे 'हिन्दी वर्णमाला के अक्षरों की आकृति और ध्वनि को पहचानते हैं'। इसके बावजूद कक्षा 1 और 2 का ज़्यादातर समय वर्णमाला और बारहखड़ी दोहराने में जाता है। जब उपरोक्त दस्तावेज़ को दिखाकर

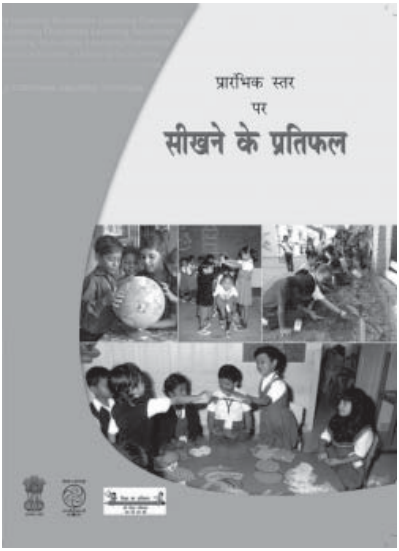

चित्र एन.सी.ई.आर.टी. की वेबसाइट से साभार।

शिक्षकों से इस मुद्दे पर बात की जाती है तो अक्सर वे यह कहते हुए पाए जाते हैं कि पहले अक्षर-मात्रा तो सीख जाएँ, फिर इन चीज़ों पर काम करेंगे। यह सब देखकर इस बात की ज़रूरत महसूस होती है कि 'सीखने के प्रतिफल' को समझकर, उन्हें अपने काम में लागू किया जाए।

* *'सीखने के प्रतिफल' दस्तावेज़ को निम्नलिखित लिंक पर देखा जा सकता है - https://ncert.nic.in/learning-outcome.php*

शब्द-पहचान

अक्सर शिक्षक इस बात को सुनकर चौंक जाते हैं कि बच्चों को शुरुआत से ही किताबें पढ़ना सिखाया जाना चाहिए। यह आम धारणा है कि यदि बच्चों को अक्षर ही नहीं पता तो वे कहानी कैसे पढ़ेंगे। हम स्कूल में पढ़ना सिखाते वक्त इस बात को भूल जाते हैं कि बच्चा घर पर अपनी ज़रूरत के लिए कैसे-कैसे प्रयास करता है और बहुत-से शब्दों से परिचित हो जाता है। बच्चा बिना अक्षर ज्ञान के अपनी पसन्द की चॉकलेट, बिस्कुट, पास की दुकान का नाम अदि पहचानने लगता है। गौर करें कि यहाँ मैं 'शब्द-पहचान' की बात कर रही हूँ, 'शब्द-पढ़ना' की नहीं। आप 'सीखने के प्रतिफल' में देख सकते हैं कि उसमें भी 'शब्द पहचान' का ज़िक्र है।

हम सिद्धान्त के तौर पर यह मानते हैं कि बच्चा जो जानता है, उसके आगे वह सिखाना है जो वह नहीं जानता। परन्तु कक्षा में ऐसा नहीं दिखता। यदि हम सिद्धान्त को व्यवहार में मानते तो हमारी कक्षा के श्यामपट्ट पर वे शब्द दिखाई देते जिनसे बच्चे परिचित हैं। कृष्ण कुमार कहते हैं कि हिमाचल प्रदेश में 'ह' से 'हिम' नहीं पढ़ाते, राजस्थान में 'र' से 'रेत' नहीं पढ़ाते। ज़्यादातर स्कूलों में 'क' से 'कबूतर' ही सुनने को मिलता है। सोचिए, जिस बच्चे का नाम 'कल्याण' है, उससे भी जब 'क' से शुरू होने वाला एक शब्द बताने के लिए कहा जाए और वह बच्चा अपना नाम न बोलकर, 'क' से 'कबूतर' कहे, तो आप क्या महसूस करेंगे।

बच्चे जब पढ़ना सीखते हैं तो वे अर्थ बनाने के लिए अक्षर-मात्रा सम्बन्ध के अलावा कुछ युक्तियों का भी इस्तेमाल करते हैं जो 'सीखने के प्रतिफल' में साफ तौर से लिखा हुआ है। पढ़ना सिखाने की गाड़ी नीचे दिए चार पहियों पर चलती है, पर स्कूलों में केवल एक पहिये 'अक्षर-मात्रा' पर इसे चलाने की पुरज़ोर कोशिश की जा रही है जिसकी वजह से पढ़ना और समझना, दो अलग-अलग बातें हो गई हैं।

- केवल चित्रों या चित्रों एवं प्रिंट की मदद से अनुमान लगाना
- शब्दों को पहचानना
- पूर्व-अनुभव और जानकारी का इस्तेमाल करते हुए अनुमान लगाना
- अक्षर-ध्वनि सम्बन्ध का इस्तेमाल करना

आइए, कक्षा 1 और 2 में पढ़ना सीखने की प्रक्रिया में 'सीखने के प्रतिफल' को कुछ उदाहरणों से समझते हैं।

क्या पढ़ना केवल अक्षर-मात्रा जोड़ना है?

आइए, इन्हें अनुभव करके समझते हैं। नीचे दिए गए अनुच्छेद को पढ़िए

और स्टॉपवॉच पर देखिए कि आपको अनुच्छेद पढ़ने में कितना समय लगा।

अनुच्छेद 1

हरिनिये दारिमुखो के जेनो केब्रिधो, रोदे बोसे चेते खायभीजे काज सिद्धों। माथा नेडेगान कोरेकि जेनोकि सोंगीत, भाबदेखे मोने होबेकि ज़ेनोकि पोंदित। बिड-बिड किजेबोके नई तार ओर्थो, "आकाशे झूल झोले काठे ताई गोर्तो।" टेको माथा तेते ओथे गायछोते मोलोगधा घोर्मो, रेगे बोले।

अनुच्छेद 2

जाएगी हो शुरू प्रक्रिया की आवेदन ही महीने इस तो गया किया जारी नोटिफिकेशन पर पदों 428 हज़ार 31 लाख 1 महीने इस अगर है सकता जा किया जारी नोटिफिकेशन लिए के वेकेंसी मेगा महीने इस कि यानी जाएगा किया जारी में मार्च या फरवरी नोटिफिकेशन ये होगा जारी।

अनुच्छेद 3

सरकारी नौकरी की तलाश कर रहे युवाओं के लिए रेलवे बम्पर वेकेंसी निकालने वाला है। हाल ही में रेल मंत्री ने बेरोज़गारों के लिए बड़ा ऐलान किया था। उन्होंने कहा था कि रेलवे में 2 लाख 30 हज़ार पदों पर भर्तियाँ की जाएँगी। बता दें कि 2 लाख 30 हज़ार नए पदों पर होने वाली भर्ती में आर्थिक रूप से कमज़ोर उम्मीदवारों को 10 फीसदी आरक्षण दिया जाएगा।

आपने पाया होगा कि अनुच्छेद 1 को पढ़ने में आपको अनुच्छेद 2 से ज़्यादा समय लगा। क्या आप ऐसा होने का कारण सोच सकते हैं? 'सीखने के प्रतिफलों' में 'शब्द-पहचान' का ज़िक्र है। आपको अनुच्छेद 1 को पढ़ने में ज़्यादा समय शब्दों को न पहचान पाने के कारण लगा। साथ ही, पढ़ने में आपसे बहुत-सी गलतियाँ भी हुई होंगी। प्रश्न यह है कि पढ़ना यदि अक्षर-मात्रा को जोड़ना भर है तो ऐसा नहीं होना चाहिए था। पढ़ने में समय ज़्यादा लगा, यह तो फिर भी समझ आता है परन्तु अनुच्छेद 1 को पढ़ने में गलतियाँ क्यों हुई होंगी? क्योंकि पहले अनुच्छेद को पढ़ने में आप सिर्फ अक्षर-मात्रा की युक्ति का इस्तेमाल कर पा रहे थे।

इस तरह अनुच्छेद 2 को पढ़ने में अनुच्छेद 3 की तुलना में ज़्यादा समय लगा होगा। अब ज़रा सोचिए कि ऐसा क्यों हुआ होगा। 'सीखने के प्रतिफल' में सन्दर्भ की मदद से अनुमान लगाना लिखा गया है। अनुच्छेद 2 में आप शब्द पहचान पा रहे थे लेकिन उल्टा लिखा होने के कारण अनुमान लगाने में परेशानी हो रही थी जिसके कारण आपकी पढ़ने की रफ्तार कम हो गई। अनुच्छेद 2 को पढ़ने के दौरान आपने यह भी अनुभव किया होगा कि उल्टा लिखा होने के बावजूद आपने कहीं-कहीं

सही क्रम में पढ़ा है। यदि आपके साथ ऐसा नहीं हुआ तो बहुत सम्भावना है कि अनुच्छेद थोड़ा और लम्बा होता तो आप यह ज़रूर महसूस कर पाते।

तीसरे अनुच्छेद में आप शब्द-पहचान, सन्दर्भ, पूर्व-अनुभव और जानकारी के आधार पर अनुमान व अक्षर-मात्रा – इन चारों युक्तियों का प्रयोग कर रहे थे इसलिए आप तेज़ी-से अर्थ के साथ पढ़ पा रहे थे।

अब आप अपने इस पढ़ने के अनुभव की तुलना एक बच्चे के पढ़ना सीखने की प्रक्रिया से करें। एक 6 वर्ष के बच्चे के लिए पढ़ना सीखने का अनुभव वैसा ही रहा होगा जैसा आपका अनुभव अनुच्छेद 1 को पढ़ने का रहा। शायद आपने उस अनुच्छेद को पूरा पढ़ा भी न हो। जब आप अनुच्छेद 1 को पढ़ रहे थे, तब क्या आपको अच्छा लग रहा था? शायद नहीं। जब बच्चे पढ़ने के लिए सिर्फ एक ही युक्ति 'अक्षर-मात्रा' का इस्तेमाल करते हैं तो उनकी पढ़ने की गति काफी कम हो जाती है, ठीक वैसे ही जैसे आपने अनुच्छेद 1 को पढ़ते समय अनुभव किया। और पढ़ने की गति का, अर्थ न बना पाने से सीधा सम्बन्ध है। इसे अनुभव करने के लिए आप कोई वाक्य (थोड़ा लम्बा और आपके मानसिक स्तर की किसी किताब का) धीरे-धीरे पढ़कर देखिए। आप पाएँगे कि धीरे पढ़े जाने के कारण आपको उसका अर्थ बना पाने में परेशानी महसूस हो रही है।

इस दस्तावेज़ की प्रस्तावना में यह भी लिखा है कि पढ़ने की शुरुआत अर्थपूर्ण सामग्री से और किसी उद्देश्य के लिए होनी चाहिए। अब प्रश्न यह उठता है कि सन्दर्भ के आधार पर अनुमान लगाने के लिए और शब्द-पहचान ज़्यादा कर पाने के लिए भी तो पढ़ते आना चाहिए। लेकिन पहली कक्षा के बच्चों को तो पढ़ना आता नहीं फिर हम कैसे अनुमान और शब्द-पहचान के कौशल को बढ़ाने पर काम करेंगे?

किसी भी कहानी-कविता को पढ़ाते हुए यदि हम सभी युक्तियों यानी अनुमान, शब्द-पहचान, अक्षर-मात्रा सम्बन्ध और चित्रों का उपयोग करेंगे तो बच्चों को अर्थपूर्ण रूप से पढ़ना सिखा सकते हैं। एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित 'बरखा' शृंखला की किताबें इस सन्दर्भ में बहुत उपयोगी हैं। इन किताबों में पढ़ना सीखने की प्रक्रिया में आप बच्चों को सभी युक्तियों को इस्तेमाल करते देखते हैं। 'पढ़ने' की इस प्रक्रिया में बच्चे बहुत-से शब्दों को बदल देते हैं। शब्द बदलना इस बात को दर्शाता है कि बच्चे जो पढ़ रहे हैं, वह उन्हें समझ आ रहा है। कृष्ण कुमार अनुमान लगाने को, पढ़ना सीखने की कुँजी कहते हैं। यह अनुमान हम बहुत-से कारकों के आधार पर लगाते हैं। जैसे - पूर्व-अनुभव और जानकारी, शीर्षक, चित्र, सन्दर्भ, वाक्य संरचना की मदद आदि।

अनुमान लगाना – कुछ उदाहरण

बच्चे पढ़ते समय अर्थ की खोज के लिए इन सभी युक्तियों का इस्तेमाल कैसे करते हैं, आइए, इसे कुछ उदाहरणों की मदद से समझते हैं।

उदाहरण 1

लिखा था – तोता धीरे-धीरे चल रहा था।

पढ़ा गया – तोता धीरे-धीरे नींग रहा था।

बुन्देलखण्डी में 'चलना' को 'नींगना' बोलते हैं। यदि बच्चा सिर्फ चित्र देखकर बोल रहा होता तो वह कहता - 'मिट्ठू हल्के-हल्के नींग रहा था' (बच्चा पूरा वाक्य बुन्देलखण्डी में बोल रहा होता)। परन्तु उसने ऐसे नहीं पढ़ा। यह इस बात का प्रमाण है कि बच्चा सिर्फ चित्र देखकर नहीं बोल रहा है, वह अक्षर-मात्रा और शिक्षक द्वारा सुनाई गई कहानी, दोनों को ध्यान में रखकर कहानी को पढ़ने की कोशिश कर रहा है। अक्सर स्कूलों में चित्र पठन को पढ़ना नहीं समझा जाता इसलिए कक्षा 1 और 2 के बच्चों को पढ़ने के लिए 'बरखा' सीरीज़ की किताबें नहीं दी जातीं। लेकिन इस उदाहरण में आप देख सकते हैं कि बच्चा किस तरह चित्र, स्मृति, अनुमान और अक्षर-मात्रा की मदद से पढ़ने की कोशिश कर रहा है।

उदाहरण 2

लिखा था - काजल और माधव ने मिलकर पिल्ले के घाव साफ किए फिर उसके घावों पर पट्टी बाँधी।

कक्षा 6 से 8 के छह बच्चे मेरे साथ बैठकर 'बरखा' सीरीज़ की 'मोनी' नाम की किताब पढ़ रहे थे। एक बच्चा जो किताब के सबसे करीब था, वह ऊपर लिखी लाइन को पढ़ रहा था। वह धीरे-धीरे अक्षर जोड़ते हुए वाक्य को 'काजल और माधव ने मिलकर पिल्ले के घाव साफ किए फिर उसके घावों पर' तक पढ़ पाया और 'पट्टी' शब्द पर अटक गया। एक बच्चा जो थोड़ी दूर बैठा था, उसने आगे का वाक्यांश बोला– 'पट्टी बाँधी'।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस बच्चे को किताब ठीक-से नहीं दिख रही थी, इसके बावजूद उसने कैसे बता दिया कि आगे क्या लिखा है; और दूसरा प्रश्न यह है कि जिस बच्चे के सामने किताब थी, वह बच्चा क्यों नहीं पढ़ पाया। जिस बच्चे के सामने किताब थी, वह सिर्फ अक्षर-ध्वनि सम्बन्ध की युक्ति का इस्तेमाल कर रहा था और अनुमान न लगा पाने के कारण हम यह कह सकते हैं कि उसे अपने पढ़े का अर्थ समझ नहीं आ रहा था; और दूसरा बच्चा सुनकर और किताब की ओर देखकर अनुमान लगा पाया। अनुमान लगाने में इस बात की भी भूमिका रही होगी कि 'पट्टी बाँधी' लिखने के लिए कितनी जगह लगेगी क्योंकि जो बच्चा थोड़ी दूर बैठा था, उसे अक्षर

ठीक-से नहीं दिख रहे होंगे। परन्तु यदि आप 'पट्टी' शब्द न पढ़ पाने का कारण 'पट्टी' में इस्तेमाल आधे अक्षर को समझते हैं तो आप अपनी कक्षा के बच्चों के साथ 'बरखा' सीरीज़ की 'चावल' कहानी पढ़ें। आप पाएँगे कि वे बच्चे जो आधे अक्षर के शब्द पृथक रूप से पढ़ने में परेशानी महसूस करते हैं, वे कहानी में आए हल्दी, प्याज़, डिब्बों, कच्चा जैसे आधे अक्षर वाले शब्द आसानी-से पढ़ ले रहे हैं। ऐसा वे कहानी के सन्दर्भ की मदद से कर पा रहे होंगे।

एक और उदाहरण देखिए - कक्षा 1 का एक बच्चा जो जल्दी सीखता है, उसने 'आ' और 'ग', दोनों अक्षर पहचान लिए पर इन दोनों को जोड़कर कौन-सा शब्द बनेगा, यह नहीं बता पा रहा था। उसे मैंने संकेत दिया कि इन दोनों को जोड़कर गर्म/जलने से सम्बन्धित शब्द बनेगा। बच्चे ने तुरन्त उत्तर दिया, "आग।" हमने लेख की शुरुआत में पढ़ने में अनुमान की भूमिका के बारे में बात की है। यहाँ आप इस भूमिका को बेहतर रूप से समझ पा रहे होंगे।

उदाहरण 3

इस चित्र को देखकर पहली कक्षा के बच्चे यह बता देते हैं कि बिल्ली ऊन के गोले को देखकर उसे गेंद समझ रही है। हालाँकि, बच्चों का ध्यान कभी-कभी ऊन के गोले के धागे पर दिलाना पड़ता है वरना वे भी उसे गेंद ही समझते हैं। आवरण पृष्ठ पर ही कहानी का प्लॉट समझ आ जाता है जिससे बच्चों को कहानी समझने में आसानी होती है।

उदाहरण 4

यह चित्र 'मीठे-मीठे गुलगुले' कहानी से लिया गया है। कहानी में जमाल की मम्मी आटा गूँथ रही होती हैं तभी पड़ोस का मदन एक सवाल पूछने आता है। मम्मी उसे सवाल समझाने लगती हैं। उतने में जमाल खुद आटा गूँथने लगता है और इस चक्कर में आटे में पानी ज़्यादा हो जाता है। सागर (मध्य प्रदेश) के बच्चे

चित्र-1: *उदाहरण 3*

चित्र-2: *उदाहरण 4*

इस कहानी और चित्र के आधार पर चित्र के नीचे लिखे वाक्य को इस तरह पढ़ते हैं – उसके हाथों में आटा छप गया/लिपट गया।

उदाहरण 5

इस चित्र को दिखाकर जब मैंने बच्चों से पूछा, "इस बिल्ली की दो-दो मुण्डी क्यों बनी हैं? क्या प्रिंट में गड़बड़ हो गई है?" तो कक्षा 1-2 के बच्चों ने बता दिया कि "नहीं मैडम, वो गेंद ढूँढ़ने के लिए जल्दी-जल्दी इधर-उधर देख रही है। यह दर्शाने के लिए चित्र ऐसा बनाया गया है।" हाँ, कभी-कभी इतने साफ शब्दों में नहीं बता पाते पर आप समझ जाते हैं कि बच्चे यह तो अच्छे से समझ रहे हैं कि प्रिंट की गलती नहीं है। सम्भवत: बच्चों को टी.वी. पर कार्टून देखने से इस चित्र को समझने में मदद मिली होगी।

चित्र-3: *उदाहरण 5*

चित्र-4: उदाहरण 6

उदाहरण 6

'बरखा' सीरीज़ की किताबों में अर्थ की खोज के बहुत-से मौके उपलब्ध हैं। चित्र-4 *कूदती जुराबें* किताब से लिया गया है। इस कहानी में एक बच्चा तालाब में नहाने जाता है और अपने मोज़ों को वहीं उतारकर रख देता है। किनारे पर रखे उसके मोज़ों में मेंढक घुस जाते हैं। नहाने के बाद तालाब से बाहर आकार वह बच्चा देखता है कि उसकी जुराबें कूद रही हैं। जब यह कहानी मैं कक्षा 2 के दो बच्चों के साथ पढ़ रही थी तो मैंने बच्चों से पूछा कि "जुराबें क्यों कूद रही हैं?" दो उत्तर आए – "जादू से" और "जुराब में मछली घुस गई है।" मैंने पूछा, "मछली पानी के बाहर कितनी देर रह पाएगी?" तो बच्चे बोले, "अरे हाँ! यह मछली तो नहीं हो सकती है।" मैंने उस वक्त कोई उत्तर नहीं दिया। किताब आगे पढ़ी। किताब के अन्तिम पन्ने पर पेड़ पर जुराबें और दो मेंढक दिखाई देते हैं। बच्चों का ध्यान मैंने मेंढक की ओर दिलाया। पर बच्चे उस वक्त भी मेंढक से जुराबों के कूदने को नहीं जोड़ पाए। मुझे इस बात पर काफी आश्चर्य हुआ। मैंने अगले दिन यही कहानी पूरी कक्षा के साथ पढ़ने की योजना बनाई। अगले दिन जैसे ही मैंने यह किताब दिखाई, पिछले दिन वाले दोनों बच्चे बोले, "मोज़े में मेंढक है।"

अब ज़रा सोचिए कि ऐसा क्यों हुआ, कैसे हुआ। क्या बच्चे कहानी खत्म हो जाने के बाद भी उस कहानी के बारे में सोच रहे होंगे? यदि मैंने पिछले दिन खुद ही बता दिया होता कि मोज़े में मेंढक है तो क्या बच्चों को यह सोचने का मौका मिलता? हमें बार-बार खुद को यह याद

दिलाते रहना होगा कि अन्तिम उत्तर बता देना शिक्षा का उद्देश्य नहीं है, उद्देश्य है मौके देना।

'बरखा' शृंखला की किताबें

अक्सर शिक्षक इन किताबों को बच्चों द्वारा पढ़े जाने पर कहते हैं कि बच्चे तो चित्रों को देखकर बोल रहे हैं, पढ़ नहीं रहे। इसलिए वे इन किताबों से पढ़ना सिखाने की बजाए वर्णमाला और बारहखड़ी का ही इस्तेमाल सही समझते हैं और जिन भी चीज़ों से बच्चों को पढ़ने में मदद मिल सकती है, उन्हें धीरे-धीरे हटाते जाते हैं। जैसे 'बरखा' सीरीज़ की किताबों का इस्तेमाल न करना, 'आज की बात' जैसी गतिविधि न करवाना (इस गतिविधि में बच्चों द्वारा बोली कोई बात लिखी जाती है और बच्चे मिलकर उसको उँगली रखकर पढ़ते हैं), कविता पर उँगली रखकर न पढ़वाना। इन सब गतिविधियों को न करवाने के कारण जो गिनवाए जाते हैं – बच्चे पढ़ थोड़े रहे हैं, कविता तो उन्हें याद है, 'आज की बात' का वाक्य भी याद है और चित्रों को तो पढ़ा नहीं जाता। इस सोच की वजह से 'पढ़ना' और 'समझना', दोनों अलग-अलग बातें बन जाती हैं। सोचिए, यह वाक्य कितना अजीब लगता है - 'बच्चे पढ़ तो लेते हैं पर समझ नहीं पाते'!

हमें दस्तावेज़ में दिए 'सीखने के प्रतिफलों' और उनके साथ दी गई प्रस्तावित गतिविधियों को अपनी कक्षा में सायास जगह देनी होगी तभी हम पढ़ने में समझने को शामिल कर पाएँगे। 'बरखा' सीरीज़ की किताबों की टैग लाइन- 'पढ़ना है समझना' – पढ़ना सिखाने की हमारी पारम्परिक दृष्टि को एक नया परिप्रेक्ष्य देती है।

मीनू पालीवाल: अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, सागर, म.प्र. में 2017 से काम कर रही हैं। इससे पहले वे 6 वर्ष तक आईसीआईसीआई बैंक में कार्यरत रहीं। मन में आने वाले सवालों के जवाब की तलाश में वे शिक्षा और शिक्षण प्रक्रिया से जुड़ीं। प्राथमिक कक्षा के बच्चों के साथ काम करने में रुचि।

सभी चित्र: एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित 'बरखा' शृंखला से साभार।

पढ़ना है समझना

Know more about Sawaliram,
the curious crow who collects questions.

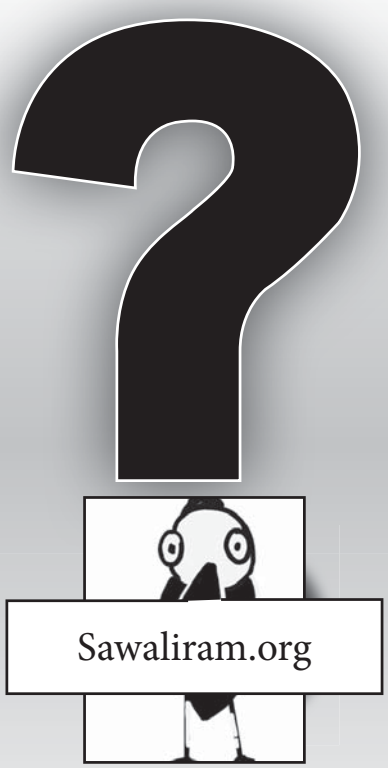

सवालीराम की वेबसाइट उन तमाम सवालों का कोष है जिन्हें साल-दर-साल देशभर से बच्चे पूछते आए हैं। इस तरह सवालीराम एक ऐसा ठिकाना मुहैया कराता है जहाँ बच्चों के सवालों के उत्तर दिए जा सकते हैं, उन्हें दर्ज किया जा सकता है, देखा जा सकता है और विश्लेषित किया जा सकता है। ये सवाल अहम रूप से हम सभी को – अभिभावकों, शिक्षकों, पाठ्यचर्या निर्माताओं, लेखकों और शोधकर्ताओं को बच्चों की समृद्ध और बहुआयामी दुनिया की झलक दिखाते हैं।

अभियान : टाइटन

सतीश बलराम अग्निहोत्री

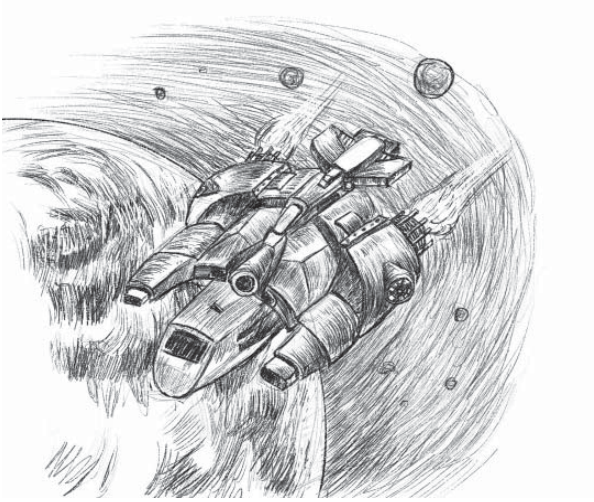

प्रोफेसर अभियान आज भी देर से घर लौटे। आजकल सारा ही मामला गड़बड़ हो रहा था। इतने दिनों बाद जब दिमाग में प्रयोग की रूपरेखा स्पष्ट होकर उभरी तो पता चला कि मनजीत के हाथों लेज़र-टॉर्च ही टूट गई। लेज़र किरणों के अभाव में प्रयोग शुरू करना सम्भव ही नहीं था।

"हफ्ते भर की छुट्टी!" वे मन-ही-मन बुदबुदाए। हठात् उन्हें अपने मित्र सदाशिवन की याद आई, जिन्होंने उनसे कहा था, "तुम्हारी शनि की साढ़े-साती शुरू हो गई है, अभियान।"

"शनि की साढ़े साती!" उस अन्यमनस्क स्थिति में भी अभियान को हँसी आ गई। शनि के उपग्रह टाइटन पर तो हमारी कॉलोनी बसी हुई है और लोग अभी भी शनि की दशा से चिपके हुए हैं। उन्होंने कई बार सदाशिवन से कहा था, "यार शिवन, अकेले शनि के ही नौ उपग्रह हैं। उनमें सबसे बड़ा उपग्रह है, या चाँद कह लो तुम, टाइटन। अब उस टाइटन पर हमारे जागतिक अन्तरिक्ष विज्ञान केन्द्र की अपनी प्रयोगशाला है। वहाँ कौन-सी साढ़े-साती आएगी? और जो बच्चे टाइटन पर पैदा हुए हैं, उनकी कुण्डली में क्या पृथ्वी की दशा होती है?"

प्रोफेसर अभियान जाने-माने अन्तरिक्ष वैज्ञानिक थे और अन्तरिक्ष संचार-व्यवस्था के क्षेत्र में चोटी के विशेषज्ञ।

जागतिक अन्तरिक्ष विज्ञान केन्द्र की आजीवन सदस्यता उन्हें मिली हुई थी। पिछले कई महीनों से सौरमण्डल से परे स्थित ग्रहों के बीच

आपसी संचार-व्यवस्था कायम करने की समस्या पर उनका शोधकार्य चल रहा था। वे अपनी लगन और अथक परिश्रम के लिए प्रसिद्ध थे। फिर भी लेज़र-टॉर्च के टूट जाने से उन्हें काफी निराशा हुई थी।

हेलि-गैरैज की छत पर जब उन्होंने अपना हेलिकॉप्टर उतारा तो उन्हें अनुमान नहीं था कि डमरे साहब आए होंगे। वैसे यह उनके आने का मौसम था ज़रूर। डमरे साहब उनके घनिष्ठ मित्र और शहर के ख्यातिप्राप्त स्कूल 'विज्ञान' के प्रिंसिपल थे। उनके घनिष्ठ सम्बन्धों की एक और कड़ी थी – प्रो. अभियान हर वर्ष उनके स्कूल में तीन महीने फिज़िक्स पढ़ाते थे, वह भी छठी और सातवीं कक्षा को। यह क्रम 7-8 वर्षों से अनवरत चला आ रहा था। अभियान के सभी मित्र उनकी इस खब्त का मज़ाक उड़ाया करते पर उन्हें इसमें मज़ा आता था। वे कहते थे, "अरे, अन्तरिक्ष वैज्ञानिक हुआ तो क्या हुआ? इन बच्चों को पढ़ाना आसान थोड़े ही है! चुनौती है, चुनौती! पढ़ाकर देखो, पता चलेगा, कितना सन्तोष मिलता है।" तथ्य तो यह था कि अन्य अभिभावकों की तरह ही अभियान का मज़ाक उड़ाने वाले दोस्त भी अपने बच्चों का दाखिला 'विज्ञान' में ही कराते, कम-से-कम छठी और सातवीं में।

लेकिन अभियान आज 'चुनौती', 'सन्तोष' वगैरह भावनाओं से परे थे। प्रारम्भिक बातचीत के बाद जैसे ही इस साल की कक्षाओं का ज़िक्र छिड़ा, वे बड़े ही थके स्वर में बोले, "यार डमरे, इस साल के लिए छोड़ दो। मैं लम्बी छुट्टी लेकर हिमालय पर जाने की सोच रहा हूँ। इस कमबख्त प्रयोग ने दुखी ज़रूर कर रखा है।"

डमरे ताड़ गए कि आज मामला कुछ गम्भीर है, वरना इस काम के लिए प्रोफेसर मना नहीं करते। उन्होंने विषय टाल दिया।

उनके जाने के बाद अभियान कुछ देर अनमने-से बैठे रहे। उन्हें भी अपनी नकार अच्छी नहीं लगी थी। पर जल्दी ही उन्होंने यह विचार मन से झटक डाला।

अपने यांत्रिक मानव 'स्वचालित' को ढेर सारी सूचनाएँ देने के बाद अभियान अपने लिहाफ में दुबक गए। जल्द ही उनकी आँख लग गई।

'स्वचालित' काफी मज़ेदार यांत्रिक मानव, यानी कि रोबोट था। अभियान ने उसके दिमाग से एक सशक्त कंप्यूटर जोड़ रखा था, जिसकी वजह से वह उन्हें पीर-बावर्ची-भिश्ती-खर, सबका काम देता था। उसकी खनखनाती धातुई हिन्दी सुनने वालों का काफी मनोरंजन करती थी। कई बार लोग उससे जान-बूझकर एक ही सवाल का जवाब बार-बार पूछते। दो बार जवाब देने के बाद तीसरी बार वह कहता, "मज़ाक मत कीजिए, जनाब!"

* * *

"सॉरी प्रोफेसर, शुभ प्रभात, टाइटन से अ.ब.स... सॉरी प्रोफेसर, शुभ प्रभात, टाइटन से अ.ब.स..." स्वचालित उनके कान के पास तेज़ वॉल्यूम में दोहराए जा रहा था। अभियान हड़बड़ाकर उठे। अ.ब.स. यानी अन्तिम बचाव सन्देश! उन्होंने स्वचालित का मुँह ऑफ किया और जल्दी-जल्दी टेलिप्रिंटर की तरफ भागे।

"हे विज्ञान!" गुप्त भाषा में भेजा गया सन्देश पढ़ते-पढ़ते वे बुदबुदाए। टाइटन पर कोई अनजान अन्तरिक्ष दानव आ धमका था। मुकाबला असम्भव... अनजान जीव अपने ग्रह से सम्पर्क की कोशिश में... फिर सौरमण्डल पर कब्ज़ा... रोकना आवश्यक... फिलहाल उसका संचार ट्रांसमीटर क्षतिग्रस्त... ठीक होने से पहले बचाव ज़रूरी... तुरन्त आएँ... राव0173। डॉ. राव टाइटन पर स्थित प्रयोगशाला के संचार विभाग के अध्यक्ष थे।

जाना ज़रूरी था। अभियान ने तुरन्त जेनेवा स्थित जागतिक अन्तरिक्ष विज्ञान संस्था के अध्यक्ष प्रोफेसर गॉस से सम्पर्क बनाया। प्रोफेसर गॉस को स्थिति की जानकारी देने के बाद अभियान ने जल्दी-जल्दी स्वचालित के दिमाग में कई निर्देश भरे ताकि उनकी अनुपस्थिति में वह रोज़ाना के सारे कामों का खयाल रखे। चलने से पहले उन्होंने अन्य वस्तुओं के अलावा अपनी शक्तिशाली लेज़र बन्दूक भी ले ली। यह बन्दूक लेज़र किरणों के बहुत ही शक्तिशाली पुंज मनचाहे निशाने पर फेंक सकती थी और कठोरतम धातुओं में सेकण्डों में छेद कर देती थी।

कच्चतीवु के रॉकेट अड्डे पर उनका यान तैयार था। कच्चतीवु, जो कभी भारत और श्रीलंका के बीच वाद-विवाद का विषय था, आज एक अन्तर्राष्ट्रीय रॉकेट अड्डे का काम देता था।

टाइटन तक पहुँचने में कोई पाँच घण्टे लगने वाले थे। अभियान ने राव को कोई पूर्व सूचना दिए बिना पहुँचना ही उचित समझा। उड़ान के कोई दस मिनट बाद उन्होंने रॉकेट के पूरे नियंत्रण को स्वचालित उड़ान-व्यवस्था के हाथों सौंप दिया। यह व्यवस्था कंप्यूटर नियंत्रित थी और लक्ष्य निर्धारण-निर्देश मिल जाने पर अपने आप सारा मार्ग तय कर लेती। किसी भी त्रुटि के सुधार का काम भी वह अपने आप कर लेती। अभियान ने टाइटन से सम्बन्धित फाइल निकाली और उस पर नज़र दौड़ाने लगे।

अलार्म की तेज़ आवाज़ से उनके विचारों को एक झटका लगा। नियंत्रण-कक्ष के बाहर लाल संकेत उभर आया था और उसके नीचे लगी स्क्रीन पर हरे रंगों में समस्या लिखी हुई थी –

तीव्र चुम्बकीय क्षेत्र का प्रभाव। त्रुटि सुधार प्रयत्नों के बावजूद यान एक

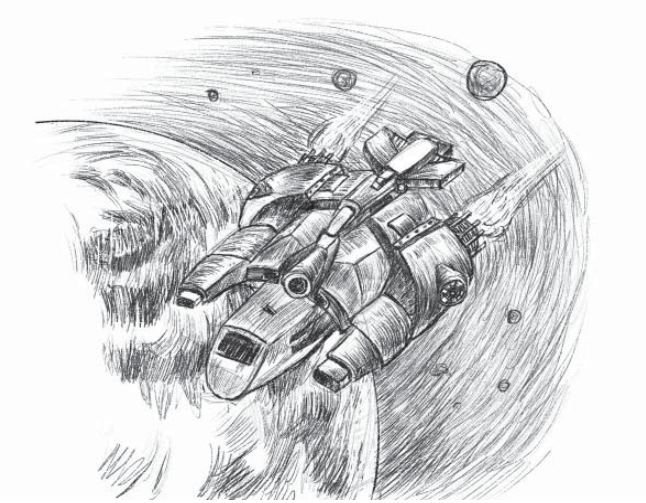

दिशा में खिंचता जा रहा है। प्रयत्न विफल। आशंकित खतरा। टाइटन तल से दूरी पाँच सौ किलोमीटर।

उड़ान व्यवस्था आम तौर पर अड़चनों का समाधान खुद कर लिया करती थी। पर यह समस्या आम नहीं दिखती थी।

प्रोफेसर अभियान नियंत्रण-कक्ष में घुसे। उनकी नज़र पहले चुम्बकीय क्षेत्र-मापी पर पड़ी। "अरे बाप रे, इतना तीव्र क्षेत्र तो टाइटन के रास्ते में था नहीं। और वह भी टाइटन से केवल तीन सौ किलोमीटर दूर?" उन्होंने यान को मोड़ा और खिंचाव की दिशा के विरुद्ध ले जाने की कोशिश करने लगे। अब जाकर उनकी समझ में आया कि उनका पाला किसी अप्राकृतिक चीज़ से पड़ा है। जितना ही वे यान को खिंचाव की दिशा से दूर ले जाने की कोशिश कर रहे थे, चुम्बकीय क्षेत्र उतना ही तीव्र होता जा रहा था। "फँस गए!" अभियान ने सोचा। यह ज़रूर उस अन्तरिक्ष दानव की करामात होगी। उन्होंने टीवी कैमरा ऑन किया और चारों तरफ 'नज़र' दौड़ाने लगे।

टाइटन पर पहली बार मौसम इतना साफ था। रेतीली ज़मीन के एक लम्बे सपाट पट्टे के दूसरे छोर पर वह जीव खड़ा था, जिसकी ओर यान असहाय-सा खिंचता चला जा रहा था। अन्ततः यान टाइटन पर पहुँचकर हल्के-हल्के झटके खाता रहा।

पहली कोई बात यदि अभियान के दिमाग में आई तो वह थी लेज़र-बन्दूक के इस्तेमाल की। उन्होंने बन्दूक ऑन कर निशाना साधा। पर यह क्या? जीव के हरे रंग के शरीर पर जहाँ भी लेज़र किरण पड़ रही

थी, वहाँ एक बड़ा-सा नारंगी धब्बा चमकने लगता था। रुपए के सिक्के के आकार का। प्रोफेसर ने विभिन्न स्थानों पर निशाना साधा पर नतीजा वही। जीव पर लेज़र किरणों का कोई प्रभाव पड़ता नज़र नहीं आ रहा था। उन्होंने झल्लाकर बन्दूक एक ओर फेंक दी।

यान लगभग रुक गया था। अभियान चुपचाप खड़े थे – जीव के अगले कदम की प्रतीक्षा करते हुए। तभी दरवाज़ा खुला और आवाज़ आई, "स्वागत है, प्रोफेसर अभियान। मुझे तुम्हारे आने की सूचना पहले से थी। कहो तो 0173 का सारा सन्देश सुना दूँ।"

दरवाज़े पर वह जीव खड़ा था। मटमैले, बहुत ही विचित्र हरे रंग की चमड़ी। सारा शरीर ज्यामितीय आकार का – मानो मशीन से बना हो। घनाकार सिर, सिलिंडरनुमा धड़, गोल-गोल हाथ-पैर और बटननुमा उँगलियाँ।

"तुमने दरवाज़ा कैसे खोल लिया?" अभियान अपना आश्चर्य छिपा नहीं पाए। "और तुम हिन्दी कैसे बोल लेते हो?" और भी कई प्रश्न उभरे थे उनके दिमाग में।

"आसान बात है। उत्तर क्रमांक एक – मैंने ध्वनि-तरंगों के सहारे दरवाज़े का ताला पढ़ लिया और खोल दिया। उत्तर क्रमांक दो – मैंने तुम्हारे दो-तीन सहयोगियों के दिमाग खोलकर पढ़ लिए और अपनी याददाश्त में भर लिए। अब उन्हें जो कुछ मालूम है, मुझे भी मालूम है।"

"तुमने दिमाग क्या किए?" अभियान का कलेजा मुँह को आ गया।

"खोलकर पढ़ लिए।" जीव ने सपाट लहज़े में दोहराया। "अब मतलब की बातें करते हैं। तुम्हें सितारों के बीच सन्देश भेजने की व्यवस्था की कितनी जानकारी है?"

अभियान पशोपेश में पड़ गए। क्या कहें? 'है'? 'नहीं है'? 'थोड़ी-सी है'? 'अगर 'है' कह दूँ तो कहीं यह मेरा दिमाग खोलकर न पढ़ ले।' हालाँकि, खोलकर पढ़ने की बात उनके पल्ले पड़ी नहीं थी फिर भी उनके शरीर में एक झुरझुरी-सी दौड़ गई। 'अगर 'नहीं है' कह दें तो कहीं वह पृथ्वी पर ले जाने को मजबूर न कर दे।' पशोपेश की स्थिति में भी उन्होंने जल्दी विचार बदला। कहीं जीव को उनके विचारों का पता न चल जाए। फिर साहस जुटाकर बोले, "मुझे थोड़ी-सी जानकारी है, पर पता नहीं तुम्हारे कितने काम आएगी। लेकिन पहले अपनी समस्या तो बताओ। हम लोग ज़रा ढंग से बैठकर बातें कर लें। फिर तय करेंगे, मैं तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूँ।"

"तुम पहले व्यक्ति हो, जिसने सहयोग की बात की है। बाकी सभी तो आक्रमण का रुख अपनाए हुए हैं।"

जीव ने कहा, “वैसे तुम भी मुझ पर लेज़र किरण फोकस कर रहे थे। पता नहीं तुम लोग उन चीज़ों को हथियार क्यों समझते हो! मेरे खोल पर उसका कोई असर नहीं होता। मैं उन किरणों की ऊर्जा को तुरन्त अपने बदन पर चारों तरफ फैलाकर कुन्द कर देता हूँ। खैर, जाने दो।”

“तुम्हारा नाम क्या है?” अभियान ने पूछा।

“तुम्हारी भाषा में मेरा नाम है संकेतक तीन तेरह सोलह सौ छप्पन...” कई विचार अभियान के दिमाग में एक-साथ कौन्ध गए। जीव का भावहीन लहज़ा, दिमाग खोलकर पढ़ना, और याददाश्त में भरना... कहीं यह यांत्रिक मानव तो नहीं? बहुत ही विकसित किस्म का, पर यांत्रिक - असली मानव नहीं। अपने मनोभावों को छिपाते हुए वे हँसे, “इतना बड़ा नाम? अगर मैं तुम्हें तीन-तेरह कहूँ तो?”

“मुझे मालूम है प्रोफेसर, तुम्हारी भाषा में इस संख्या का मतलब भागना भी होता है। पता नहीं तुम लोग संख्याओं से ऐसे अर्थ किस तरह जोड़ देते हो! मुझे अपनी याददाश्त में से सही अर्थ खोजने में बहुत उलझन होती है।”

* * *

तीन-तेरह से जो जानकारी मिली वह बहुत उत्साहवर्धक नहीं थी। सौरमण्डल से कोई तीन प्रकाश वर्ष की दूरी पर एक ग्रह पर उन लोगों की बस्ती थी। यानी करीब $3x10^{13}$ किलोमीटर (प्रकाश एक वर्ष में करीब 10^{13} किलोमीटर की दूरी तय करता है)। उनका सारा काम परमाणु ऊर्जा से चला करता था। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में उनका परमाणु ईंधन समाप्त होने को आया था। यह ज़रूरी था कि आगामी 50-60 वर्षों में वे ऐसे किसी ग्रह पर जा बसें जहाँ उन्हें

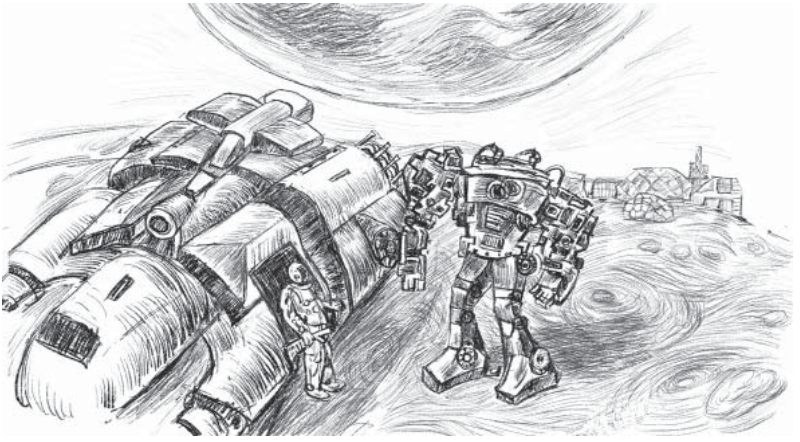

काफी मात्रा में परमाणु ईंधन मिल सके। उनके यान अन्तरिक्ष में चारों ओर ऐसे ही किसी ग्रह की तलाश में घूम रहे थे। तीन-तेरह का यान भी उन्हीं में से एक था, जो कुछ खराबियों के कारण टाइटन पर उतरने को मजबूर हुआ था। सन्तोष की बात थी कि टाइटन पर उतरते समय उसके यान और ट्रांसमीटर, दोनों को बुरी तरह क्षति पहुँची थी। बहरहाल, जीव को अब मालूम हो चुका था कि पृथ्वी पर थोरियम धातु – जो कि एक अच्छा परमाणु ईंधन है – का बहुत बड़ा भण्डार है। अब उसका ध्येय था कि जल्दी ट्रांसमीटर की मरम्मत करे और संकेत उपकरण से अपने ग्रह को सन्देश भेजे।

जिस ग्रह का उसने ज़िक्र किया था, वहाँ की सभ्यता बहुत ही विकसित मालूम होती थी। विज्ञान और टेक्नोलॉजी में उन्होंने बहुत अधिक प्रगति कर ली थी। ऐसे लोगों के धरती पर आने का परिणाम एक ही था – मानव जाति के लिए गुलामी।

तीसरी बात जो अभियान के पल्ले पड़ी, वह यह कि जीव था तो काफी विकसित किस्म का, लेकिन यांत्रिक मानव था। यह बात महत्वपूर्ण थी क्योंकि यांत्रिक मानव के दिमाग में कंप्यूटर होने के कारण सोच-विचार कर झूठ बोलना नहीं भरा था। हाँ, एक भावना उसके दिमाग में कूट-कूट कर भरी हुई थी – उसके अपने ग्रहवासियों की श्रेष्ठता का दावा। हालाँकि, वह सुख-दुख, हँसी-मज़ाक आदि भावनाओं से परे था, पर अपने ग्रह के निवासियों की श्रेष्ठता के बारे में दावा करते समय उसके लहज़े में एक कृत्रिम घमण्ड का भाव साफ झलकता था। उसे बनाने वाले वैज्ञानिकों ने अवश्य ही उसके दिमाग में इस आशय के आदेश भरे होंगे ताकि वह अपने ग्रह की श्रेष्ठता पर हमेशा अड़ा रहे।

अभियान को जल्दी ही पता लगने वाला था कि उपलब्धियों का वह घमण्ड झूठा नहीं था। जीव से फिर मिलने का वादा करके वे अपनी उड़नगाड़ी में कॉलोनी की ओर चल पड़े। सोच में वे इतने मगन थे कि उन्हें पृथ्वी-उदय देखने की भी फुरसत नहीं थी।

* * *

डॉ. राव से उनकी मुलाकात रास्ते में ही हो गई। "हम लोग आपके लिए काफी चिन्तित थे, अभियान" राव ने कहा, "रडार पर हमने आपके यान को भटकते हुए देख लिया था। पर आपकी और उस दानव की काफी गहरी छन रही थी। लग रहा था कि आपके लिए हमने नहीं, उसने बुलावा भेजा है।"

"दानव नहीं राव, यांत्रिक मानव।" अभियान ने राव को अपनी बातचीत का ब्यौरा देते हुए कहा, "मेरा अनुमान है कि उसके दिमाग में बहुत ही शक्तिशाली कंप्यूटर लगा हुआ है।

तुम जानते हो कि कंप्यूटर के सन्दर्भ में ही हम लोग याददाश्त में सूचना भरने की बात करते हैं। दूसरे, उसने अपना नाम संकेतक – तीन-तेरह-सोलह सौ छप्पन बताया। तीसरे, कंप्यूटर की भाषा में एक शब्द-चिह्न या समूह का एक ही अर्थ होता है, दो-तीन नहीं। शायद इसलिए ही वह तीन-तेरह के दो मतलबों के बारे में शिकायत कर रहा था। 'चार सौ बीस' के बारे में भी उसने कहा कि उसे मतलब खोज निकालने में दिक्कत होती है। वह कह रहा था कि जापानी भाषा अच्छी है। उसमें ऐसी कोई उलझन नहीं है। अरे, उससे मुझे याद आया, यह दिमाग खोलकर पढ़ना, भला क्या बला है?"

राव को हँसी आ गई, "दरअसल अभियान, वह वाकई एक बला है। इस जीव के पास एक कनटोप है। जिसे वह किसी अन्य के सिर पर रखकर अपने सिर से जोड़ लेता है। उसके बाद कोई आधा घण्टा वह कनटोप गूँ-गूँ की आवाज़ करता रहता है, और सिर में अजीब-सी गुदगुदी होती रहती है। इस दौरान आपके दिमाग की सारी जानकारी उसके दिमाग में चली जाती है। उसने मिलर, श्रीनिवासन और ओहिरा पर यह प्रयोग किया था। इसी वजह से उसे हिन्दी और जापानी भी आती है। लेकिन अभियान, मज़े की बात यह है कि उस प्रयोग के तुरन्त बाद इन तीनों की याददाश्त आश्चर्यजनक रूप से तेज़ हो गई थी। श्रीनिवासन को अपने छठे जन्मदिन पर पहने हुए कपड़ों का रंग याद था। दिनभर कॉलोनी में अच्छा-खासा तमाशा रहा। ये तीनों जन लोगों को अपनी याददाश्त का कमाल दिखाते रहे।"

अभियान हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए। राव ने अपनी बात जारी रखी, "लेकिन उसे जिस दिमाग की तलाश थी, वह उसे नहीं मिला। उसे ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो ग्रहों के बीच संकेतों के आदान-प्रदान के बारे में पूरी जानकारी रखता हो।"

"चू-चू-चू, अगर मैं उसे बता देता कि मैं इस क्षेत्र का विशेषज्ञ हूँ, तो वह मेरी भी याददाश्त ताज़ा कर देता।"

"अरे नहीं अभियान, उसने हमें चेतावनी दी थी कि अगर किसी ने उसे गलत सूचना दी तो कनटोप उसके सिर पर तब तक चालू रहेगा, जब तक कि वह व्यक्ति पागल न हो जाए। और उसके पास गज़ब के आधुनिक उपकरण और शक्तियाँ हैं।"

"मसलन?"

"मसलन, हमने उस पर तीव्र चुम्बकीय क्षेत्र का प्रभाव डालकर देखा तो उसने महज़ हथेली से उससे भी तीव्र चुम्बकीय क्षेत्र पैदा किया, और हमारे सारे चुम्बक बेकार कर डाले। हमने उसे एक धातु के जाल में लपेटकर उठा भी लिया था ताकि किसी क्रेटर (विवर) में डालकर

दफना दें। पर उसने आनन-फानन में अपने बदन से लेज़र जैसी, पर कई गुना तेज़, किरणें पैदा कर सेकण्डों में वह जाल काट डाला। उसके बाद उसने पता नहीं कैसे, भूकम्प के एक-दो झटके पैदा किए - छोटे झटके, पर इस चेतावनी के साथ कि अगर उसे और परेशान किया गया तो झटके काफी बड़े हो सकते हैं।"

"यानी यह यांत्रिक मानव एक टेढ़ी खीर है," अभियान ने कहा, "इससे निपटने में होशियारी बरतनी पड़ेगी।"

* * *

घर पर डॉ. राव की साथी, डॉ. गीता ने उनका स्वागत किया। डॉ. गीता स्वयं एक कंप्यूटर विशेषज्ञ थीं। उनकी चर्चा नाश्ते की मेज़ पर भी जारी रही। यह तय हुआ कि एक मीटिंग बुलाई जाए जिसमें इस जीव से निपटने के उपायों पर विचार हो।

चर्चा चल ही रही थी कि डॉ. राव के लड़के सन्दीप ने प्रवेश किया। अपना वातावरण-प्रूफ सूट उतारकर उसने अभियान को नमस्ते किया।

"कैसे हो, दीपू बेटे?"

"ठीक हूँ, अंकल। अंकल, आपको पता है, मैं अब छठी में पहुँच गया हूँ। हमारी टीचिंग मशीन का कहना है कि मैं रॉकेट के मॉडल काफी अच्छे बनाता हूँ। लेकिन अंकल, आप..." कहते-कहते वह रुक गया।

"हाँ-हाँ, बेटे! कहो!"

"आप वहाँ छठी क्लास को पढ़ाते हैं न?"

"लो, यह विज्ञापन यहाँ भी पहुँच गया। वैसे बेटे, पढ़ाता था - हूँ नहीं। इस साल मैंने मना कर दिया है।" सन्दीप की आँखों में ठण्डे पड़ते हुए उत्साह को देखकर उन्होंने जल्दी-

जल्दी बात पूरी की, "फिर भी बोलो, तुम्हें कोई काम है?"

"मुझे थोड़ा-सा पूछना था।" वह पास खिसक आया। डॉ. राव बरस पड़े, "अंकल वाले महाशय, अंकल उस अन्तरिक्ष की बला से निपटने आए हैं या आपको पढ़ाने?"

"अरे राव, पूछने दो यार, तुम्हारी मीटिंग को अभी एक घण्टा और है। क्या पूछना था, दीपू बेटे?"

"कुछ नहीं अंकल, सैटेलाइट का लेसन था। मैं बाद में पूछ लूँगा।" नाराज़ स्वर में सन्दीप ने कहा और 'मेरी बला से' का भाव चेहरे पर लेकर डोसा खाने में जुट गया।

* * *

प्रयोगशाला के समिति कक्ष में हुई बैठक में सभी लोग उपस्थित थे। अभियान ने बिना किसी भूमिका के मुख्य प्रश्न उठाया, "दोस्तो, अन्तरिक्ष से आया हुआ यह जीव हमारे लिए एक खतरा है। हालाँकि, अब तक उसने हमें कोई नुकसान नहीं पहुँचाया है, पर वह जब चाहे ऐसा कर सकता है। इसलिए यह ज़रूरी है कि हम जल्द-से-जल्द उसे बेकार कर दें। मेरा अनुमान है कि वह अत्यन्त विकसित किस्म का, पर यांत्रिक मानव है।" उन्होंने अपने तर्क फिर एक बार दोहराए। "फिर भी, इस अनुमान की पुष्टि के लिए हम श्रीनिवासन और उसके बीच शतरंज की एक बाज़ी रखेंगे।"

"उसकी आवश्यकता नहीं है, प्रोफसर। एक बात और हुई थी, जिसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि वह यांत्रिक मानव है।" ओहिरा ने कहा।

"कैसी बात?" सारी नज़रें ओहिरा पर थीं।

"अभियान, डॉ. राव ने उससे बातों-बातों में कह दिया था, 'तुम बहुत टुच्चे आदमी हो।' इस पर वह कुछ देर तक चुप रहा, फिर बोला, 'यह टुच्चे क्या होता है?' बतलाने पर उसने कुछ अन्यमनस्क-सा होकर कहा, 'यह शब्द मेरी याददाश्त में नहीं है। कहीं खो तो नहीं गया?' ऐसा कथन कंप्यूटर मस्तिष्क के बारे में ही सम्भव है। दूसरी बात यह कि श्रीनिवासन को खुद 'टुच्चा' शब्द मालूम नहीं है और इस जीव ने श्रीनिवासन से हिन्दी 'सीखी' है।"

"मुझे भी लगता है कि वह ज़रूर यांत्रिक मानव है, और उस स्थिति में उसके दिमाग में ज़रूर इलेक्ट्रॉनिक सर्किट होंगे जिनमें विद्युतधारा बहती होगी। हम तीव्र विद्युत क्षेत्र पैदा कर उसके दिमाग को खराब कर सकते हैं।" चेसलॉव ने सुझाव दिया।

"मेरा भी यही विचार था," अभियान ने बात आगे बढ़ाई, "दरअसल, मैं अपने साथ तीव्र विद्युत क्षेत्र पैदा करने वाली मशीन ले भी आया हूँ। लेकिन उसमें एक छोटी-सी दिक्कत है। विद्युत क्षेत्र के तीव्रतम होने में कुछ समय लगता है। उतनी देर में अगर जीव को पता लग गया तो हम सबकी छुट्टी। वह और कुछ नहीं तो एक-आध दर्जन भूकम्प, चाहो तो टाइटन-कम्प कह लो, बरपा देगा।"

"साथियो, क्यों न हम शतरंज खेल-खेल कर उसका दिमाग खराब कर दें? मैं सोच-सोच कर ऐसी बचकानी चालें चलूँगा जो उसके दिमाग में न हों। कहीं-न-कहीं उसका दिमाग जाम हो जाएगा सोचते-सोचते।" श्रीनिवासन ने कहा।

"पागल हो?" डॉ. गीता ने झिड़का, "ऐसा कभी नहीं होगा। उसे शतरंज के नियम जो मालूम हैं। कुछ समय बाद जब सारी याददाश्त छान मारने के बावजूद उसे कोई चाल नहीं सूझेगी तो वह नियमों के मुताबिक कोई चाल चलेगा। उसके जैसे विकसित यंत्र के लिए, इसमें सब मिलाकर एक या दो मिनटों से ज़्यादा समय नहीं लगेगा।"

"ठीक है, पर शतरंज खेलकर उसे उलझाए तो रख सकते हैं।" श्रीनिवासन का उत्साह कायम था, "तब तक यदि विद्युत क्षेत्र काम कर दे..."

"यह सम्भव है।" अभियान ने कहा, "लेकिन हम एक ही तरकीब के भरोसे बैठे नहीं रह सकते। और उपाय भी सोचने पड़ेंगे।"

"मेरा एक सुझाव है।" यह थे अमरीकी रॉकेट विशेषज्ञ रॉबर्ट, "क्यों न हम उसे पृथ्वी ले जाने के बहाने ले चलें और बीच रास्ते में रॉकेट को बम से उड़ा दें? इसमें पायलट की जान को पूरा खतरा है, पर आवश्यकता हो तो मैं यह काम करने को तैयार हूँ।"

सबने सराहना भरी नज़रों से रॉबर्ट की ओर देखा। वह काफी गम्भीर था।

"एक छोटी-सी समस्या है।" ओहिरा ने कहा।

"वह क्या?"

"अगर मैं उस जीव की जगह होता तो पहले पायलट का दिमाग पढ़ लेता और फिर खुद यान चलाता, उस हालत में..."

"चलाना तो बाद की बात है, वह तो पढ़कर ही पायलट के इरादे जान लेगा। पर अगर कोई तरकीब कामयाब नहीं होती तो हमें शायद यही करना पड़े। खतरा है, पर वह तो उठाना पड़ेगा।"

"ओह नो, प्रोफेसर! एक बात तो हम सबके दिमाग में आई ही नहीं।" डॉ. राव, जो अब तक चुप बैठे थे, बोल पड़े, "अगर अभी कहीं जीव के दिमाग में आपका दिमाग खोलकर पढ़ने का फितूर आ गया तो सबकी छुट्टी। जहाँ हम उसका खात्मा करने की सोच रहे हैं, वह अकेला ही हम सबका खात्मा करके पृथ्वी की ओर चल पड़ेगा।"

सबके शरीर में एक सिहरन-सी दौड़ गई। डॉ. राव की बात अप्रिय थी पर उसमें वज़न था। एक बार यान चलाने की जानकारी मिलने पर जीव बड़े आराम-से पृथ्वी पर पहुँच सकता था, और अपनी शक्तियों के सहारे वहाँ के वैज्ञानिकों को अपने ग्रह पर सन्देश भेजने को बाध्य कर सकता था। कमरे की ठण्ड के बावजूद अभियान को पसीना आ गया। वे सोच भी रहे थे कि 'अच्छा हुआ, अब तक सुदूर ग्रहों में संचार के तरीके की खोज, पृथ्वी पर, वे या और कोई वैज्ञानिक नहीं कर पाया है'। इस खयाल से वे तुरन्त सम्भल गए।

"दोस्तो, डॉ. राव की बात सही है। वह जीव हममें से किसी का भी दिमाग पढ़ सकता है और उसके बाद यान लेकर उसका धरती पर पहुँचना लाज़िमी है। अत: यह ज़रूरी है कि हममें से कोई एक व्यक्ति औरों को बताए बिना, यान का एक-आध पुर्ज़ा निकालकर कहीं छिपा दे, ताकि अगर यान चलाने की जानकारी मिल भी जाए तो वह यान लेकर उड़ न पाए। डॉ. राव ने पहले ही सन्देश देकर अन्य यानों को टाइटन पर उतरने से मना कर दिया है।" सबने सहमति में गर्दन हिलायी। "और दूसरी बात यह है कि हमें किसी तरह उसे यह विश्वास दिलाए रखना है कि हम उसका सहयोग कर रहे हैं ताकि उसे हमारे दिमाग पढ़ने या पृथ्वी पर जाने की आवश्यकता महसूस न हो।"

चर्चा काफी देर तक चली। लेकिन कोई कारगर हल सामने नहीं आया। यह तय हुआ कि विद्युत क्षेत्र का प्रभाव डालकर जीव के दिमाग को खराब करने की कोशिश की जाए।

* * *

उड़नखटोले से उतरते हुए अभियान को देखकर जीव ने हाथ हिलाया,

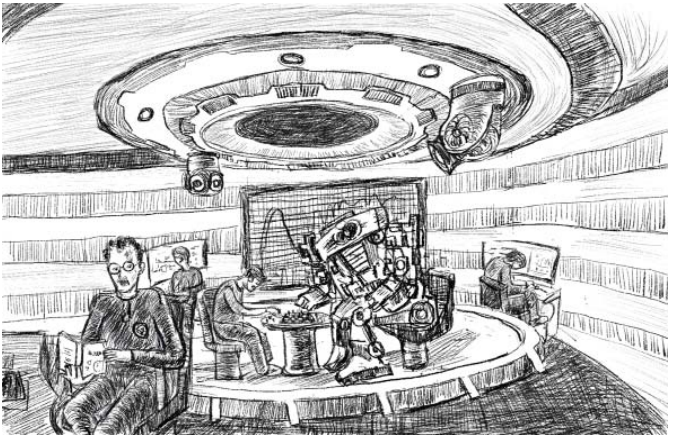

"आओ प्रोफेसर, मैं तुम्हारा ही इन्तज़ार कर रहा था। मैंने अपने ट्रांसमीटर की करीब-करीब पूरी मरम्मत कर ली है। अब संकेत उपकरण ठीक करने में तुम्हारी मदद की आवश्यकता है।"

खबर सुनकर अभियान का दिल डूब गया। पर प्रकट में वह बोले, "बधाई हो!" ट्रांसमीटर को देख अभियान दंग रह गए। इतना आधुनिक और शक्तिशाली उपकरण उन्होंने पहले नहीं देखा था। "यह कमबख्त तो ब्रम्हाण्ड के एक छोर से दूसरे छोर तक संकेत भेज सकेगा!" उन्होंने मन-ही-मन सोचा। अच्छा था कि संकेत निर्माण करने का उपकरण पूरी तरह ध्वस्त था।

उपकरण का काफी देर तक मुआयना करने के बाद अभियान ने मौन भंग किया, "मुझे तो ऐसा लगता है, तीन-तेरह, कि यह उपकरण नए सिरे से बनाना पड़ेगा। उसके लिए मुझे कुछ समय चाहिए सोचने को। वैसे तुम्हारे ट्रांसमीटर को देखकर मैं दंग रह गया हूँ।"

"क्यों नहीं, हमारे ग्रह पर जो बना है।" जीव की आवाज़ में घमण्ड का पुट स्पष्ट था। 'अच्छा है, अगर यही घमण्ड तुम्हें ले डूबे।' अभियान ने सोचा। ऊपरी तौर पर वे बोले, "चलो, यान के अन्दर चलते हैं। मैं तुम्हारे संकेत-उपकरण की समस्या के बारे में कुछ किताबें देख लूँ, तब तक तुम श्रीनिवासन के साथ बैठकर शतरंज की एक बाज़ी खेलो।"

"यह ठीक है," जीव ने कहा, "मुझे शतरंज खेलना पसन्द है।" यान में श्रीनिवासन के अलावा अन्तरिक्ष सूट पहने हुए और तीन-चार लोगों की उपस्थिति जीव ने दर्ज की। लेकिन वह आश्वस्त था। एक तो पुराने अनुभव की वजह से और दूसरा अभियान के सहयोगपूर्ण स्वर के कारण। वह आश्वस्त था कि वे लोग

आक्रमण की गलती नहीं दोहराएँगे। फिर भी उसने अपनी निरीक्षण व्यवस्था को 'सतर्क' की स्थिति में डाला और शतरंज खेलने बैठ गया।

अभियान एक किताब के पन्ने पलटने में व्यस्त हो गए। श्रीनिवासन ने कुछ प्रचलित चालें चलीं जिनका प्रचलित जवाब जीव की ओर से मिला। इस बीच चैसलॉव विद्युत क्षेत्र पैदा करने वाली मशीन को जीव के शरीर पर फोकस कर मशीन चालू कर चुके थे।

श्रीनिवासन की अगली चाल काफी बचकानी थी। जीव को जवाबी चाल चलने में थोड़ा समय लगा। अगली चाल और भी बचकानी थी। जीव ने अपनी याददाश्त में उसका जवाब ढूँढ़ा, जवाब नदारद था। थोड़ा अन्यमनस्क होकर उसने शतरंज के सारे नियमों पर दिमाग दौड़ाया और चाल चली। इस बार उसे कुछ अधिक समय लगा।

विद्युत क्षेत्र की तीव्रता बढ़ती जा रही थी।

अगली चाल में श्रीनिवासन ने हाथी को आगे बढ़ाते हुए उँगली से एक प्यादा आगे की ओर सरका दिया। दो-तीन चालों के बाद जीव की याददाश्त में कुछ खटका। बिसात पर प्यादे की जगह वह नहीं थी जो होनी चाहिए थी। उसने सारे नियम ध्यान से दोहराए और पिछली चालों के दौरान विभिन्न मोहरों की स्थिति को फिर से याद किया। कुछ गलती ज़रूर थी।

विद्युत क्षेत्र की तीव्रता अब अधिकतम हो गई थी। अभियान ने अपने माथे का पसीना पोंछा।

खटाक की आवाज़ आई। सभी नज़रें जीव की ओर मुड़ गईं। वह अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ। अभियान ने किताब से नज़रें हटाकर प्रश्नार्थक मुद्रा में जीव की ओर देखा, मानो, उन्हें कुछ पता ही न हो।

...जारी

सतीश बलराम अग्निहोत्री: भारतीय प्रशासनिक सेवा के भूतपूर्व अधिकारी और अब आई.आई.टी. मुम्बई में प्राध्यापक। जन्म रत्नागिरी ज़िले के देवरुख गाँव में हुआ। बचपन बिहार के दरभंगा शहर में गुज़रा जहाँ स्कूल और कॉलेज की पढ़ाई की। इसके बाद आई.आई.टी. मुम्बई से फिज़िक्स और फिर पर्यावरण विज्ञान में एम.टेक. किया। फिर 1980 से भारतीय प्रशासनिक सेवा में ओडिशा राज्य एवं केन्द्र सरकार में कई विशिष्ट पदों पर 35 साल सेवारत रहे। हिन्दी में विज्ञान कहानियाँ और लेख लिखने की शुरुआत तब की जानी-मानी पत्रिका 'धर्मयुग' से हुई। व्यंग्य रचनाएँ भी लिखते रहते हैं। सम्पर्क - satishagnihotri1955.in

सभी चित्र: हरमन: चित्रकार हैं। दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट, नई दिल्ली से फाइन आर्ट्स (चित्रकारी) में स्नातक और अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली से विज़ुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर। भटिंडा, पंजाब में रहती हैं।

हर बाउंड वॉल्यूम में सिमटे हैं सात रंग

भौतिकी, रसायन, गणित,
वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान,
इतिहास, भूगोल, राजनीति शास्त्र,
बच्चों-शिक्षकों के साथ अनुभव,
पुस्तक समीक्षा, पुस्तक अंश,
इंटरव्यू, आत्मकथा, जीवनी,
कहानी, भाषा शिक्षण,
शिक्षा शास्त्र

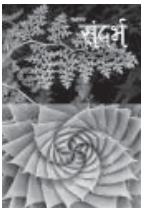

संदर्भ में अब तक प्रकाशित सामग्री 23 बाउंड वॉल्यूम में उपलब्ध है।
हरेक बाउंड वॉल्यूम का मूल्य 300 रुपए।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क कीजिए

पिटारा, एकलव्य

जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी,
भोपाल, म.प्र. पिन 462026
फोन: 0755 - 2977770, 2977771
ई-मेल: pitara@eklavya.in, www.pitarakart.in

सवालीराम

सवाल: काँच कैसे बनता है?

- जयंत कुमार नागर, नामली,
ज़िला - रतलाम, म.प्र., 1988

जवाब: यह सवाल पढ़कर तुम्हें चश्में, चूड़ियाँ, बोतलें, आइने, गिलास, बल्ब, खिड़की के शीशे, परखनली, उफननली और न जाने किन-किन चीज़ों का ध्यान हो आया होगा। काँच की बनी ये चीज़ें जितनी रोचक लगती हैं उतनी ही मज़ेदार काँच बनाने की प्रकिया भी है।

काँच रेत (सिलीका), सोडा और चूने को मिलाकर खूब गर्म करने से बनता है। इन तीनों पदार्थों को भट्टी में तब तक गर्म किया जाता है जब तक ये अच्छी तरह पिघल न जाएँ। फिर इसे पिघली हुई अवस्था में काफी देर तक रहने दिया जाता है ताकि इसमें फँसी हुई गैसें (मुख्य रूप से कार्बन डाइऑक्साइड) बुलबुले बनकर निकल जाएँ। अगर ऐसा न करें तो काँच पूरी तरह से पारदर्शी नहीं बन पाता - उसमें हवा के छोटे-छोटे बुलबुले दिखाई देते हैं। ऐसा काँच कुछ कमज़ोर भी रह जाता है और आसानी-से टूट सकता है।

इसके बाद काँच को जिस भी आकार में ढालना हो – बोतल, गिलास, बल्ब इत्यादि उसमें ढालकर बहुत ही धीरे-धीरे कई घण्टों तक ठण्डा किया जाता है। ऐसा करने के लिए उन्हें जाली की बनी एक बेल्ट पर भट्टी के अन्दर रख दिया जाता है। यह लम्बी-सी भट्टी होती है जिसका एक सिरा गर्म और दूसरा

उसकी तुलना में ठण्डा होता है। बेल्ट की रफ्तार गर्म सिरे से ठण्डे सिरे की ओर तेज़ या धीमी करके, काँच को चन्द घण्टों से कुछ दिनों तक ठण्डा होने दिया जा सकता है।

ऐसा करना इसलिए ज़रूरी है क्योंकि काँच धातुओं की तुलना में उष्मा का वहन बहुत धीरे-धीरे करता है। एकदम ठण्डा करने पर काँच की बाहरी सतह तुरन्त ठण्डी और सख्त हो जाती है। इससे काफी देर बाद अन्दरूनी सतह भी ठण्डी होने लगती है और ठण्डी होने पर सिकुड़ती है। परन्तु बाहरी सतह जो सख्त/कठोर हो चुकी होती है, इस सिकुड़न का प्रतिरोध करती है और काँच में विकृतियाँ पैदा हो जाती हैं।

काँच पर दबाव पड़ने पर या गिरने पर, काँच के अन्दर या बाहरी सतह पर, जहाँ भी ये विकृतियाँ होती हैं, उस जगह सबसे पहले दरार की शुरुआत होती है जो फिर फैलती ही जाती है। यह कुछ उसी तरह है जैसे जब कपड़े पर एक बार चीरा लग जाता है तो उसके बाद वह बहुत आसानी-से फटता ही जाता है।

काँच के प्रकार

रंगीन काँच के अलावा, काँच के और भी बहुत-से अलग-अलग गुण हो सकते हैं यदि इसकी संरचना को थोड़ा बदल दिया जाए। यह प्रत्येक प्रकार के काँच के लिए अलग-अलग उपयोगों को जन्म देता है - सोडा ग्लास, फ्लिंट ग्लास, पोटाश ग्लास, पाइरेक्स ग्लास आदि। उदाहरण के लिए, यदि हमें मज़बूती चाहिए है तो हम कॉर्निंग काँच का उपयोग करते हैं। प्रयोगशाला में पाए जाने वाले कॉर्निंग के बीकर, फ्लास्क और उफननलियाँ काफी मज़बूत होती हैं और ऐसे काँच से बनी होती हैं जो

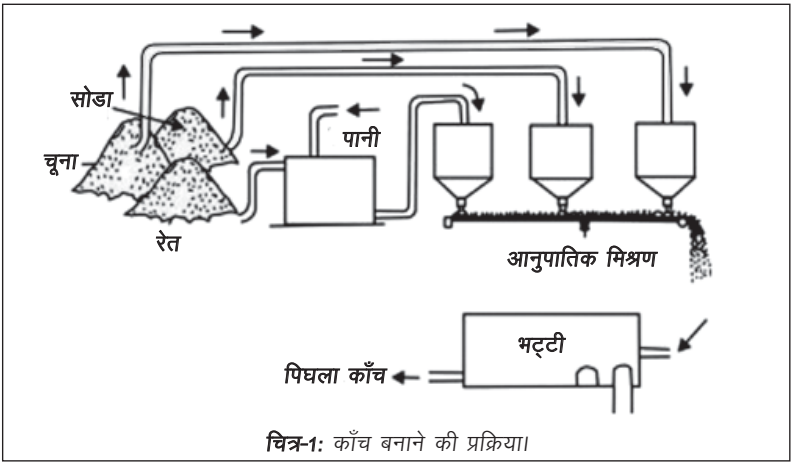

चित्र-1: *काँच बनाने की प्रक्रिया।*

काँच आसानी-से क्यों टूट जाता है?

किसी चीज़ को ठोकर लगने पर टूटना या न टूटना, इस बात पर निर्भर है कि उसके पदार्थ में कितनी विकृतियाँ हैं। यदि एक ऐसी वस्तु हो जिसके पदार्थ में बुलबुले, अशुद्धियाँ आदि नहीं हैं और न ही पदार्थ का असमान वितरण है तो उसमें चोट का झटका अधिक सरलता से फैल जाता है और पूरी-की-पूरी वस्तु कम्पन करने लगती है। दरार या चीरा पड़ने के लिए असमान कम्पन ज़रूरी है जिससे कि वस्तु के जुड़े हुए हिस्सों के बीच का जुड़ाव टूटे। यानी कि अगर किसी पदार्थ का एक हिस्सा कम्पन कर रहा है और किसी वजह से दूसरा हिस्सा कम्पन नहीं कर रहा तो उस पदार्थ में दरार या चीरा आसानी-से पड़ सकता है। अशुद्धियाँ और विकृतियाँ इसमें मदद करती हैं। वैसे यह भंगुरशीलता पदार्थ की प्रकृति पर भी निर्भर है यानी पदार्थ के अणुओं के बीच कितना आकर्षण है। धातुओं में यह आकर्षण काँच की तुलना में बहुत ज़्यादा होता है।

इसलिए काँच को ठण्डा करने की प्रक्रिया जितनी धीरे की जाएगी, काँच उतना ही विकृति-रहित और मज़बूत बनेगा। खासकर, यह प्रयोगशाला में इस्तेमाल की जाने वाली काँच की सामग्री - बीकर, लैन्स, प्रिज़्म... के लिए काफी महत्वपूर्ण है - जिन्हें कई दिनों तक ठण्डा किया जाता है।

काँच बनाने के लिए चाहिए तो सिर्फ सोडा, रेत और चूना ही पर इन तीनों चीज़ों को चुनते वक्त काफी ध्यान रखना पड़ता है। काँच बनाने के लिए आम कपड़े धोने वाला सोडा उपयुक्त नहीं है क्योंकि यह बहुत ही महीन (बारीक) होता है। इसलिए ज़्यादा गर्म करने पर यह काफी मात्रा में भट्टी से उड़ जाता है। इस वजह से काँच बनाने के लिए भारी सोडा-एश का इस्तेमाल किया जाता है।

रेत के कण भी न तो बहुत हल्के होने चाहिए, न बहुत भारी। हल्के होने पर वे भट्टी से उड़ जाते हैं और भारी होने पर आसानी-से पिघलते नहीं। काँच बनाने के लिए उपयुक्त चूना मध्य प्रदेश में सतना और कटनी के पास पाया जाता है।

इन तीनों पदार्थों के अलावा अशुद्धियों को दूर करने के लिए, बुलबुलों-गैसों के निकलने की प्रक्रिया तेज़ करने के लिए, पिघले हुए काँच को ज़्यादा तरल बनाने के लिए, या फिर काँच को कोई विशेष रंग देने के लिए - अन्य पदार्थ भी मिलाए जाते हैं। विभिन्न रंगों के लिए निम्नलिखित पदार्थ मिलाए जाते हैं-

- गहरे नीले-हरे रंग के लिए - कोबाल्ट
- हरे-भूरे रंग के लिए - लोहा
- लाल रंग के लिए - सोना

काँच बनाने में काम आने वाले पदार्थ में लोहे का ऑक्साइड अशुद्धि के रूप में होने से काँच में हल्का हरा रंग आ जाता है।

सफेद/रंगहीन, पारदर्शक काँच बनाने के लिए कम-से-कम अशुद्धि वाले पदार्थों का इस्तेमाल करना ज़रूरी है। खासकर लैन्स, प्रिज़्म आदि के लिए अशुद्धि-रहित काँच बहुत ही ज़रूरी है।

चित्र-2: *काँच को अधिक मज़बूत बनाने और उसे तीखे टुकड़ों में टूटने से बचाने के लिए प्लास्टिक का उपयोग किया जाता है। इससे काँच पर सिर्फ दरारें आती हैं और काँच बिखरता नहीं है।*

गर्म किए जाने पर बहुत ज़्यादा नहीं फैलता। इसलिए यह गर्म करने पर आसानी-से नहीं टूटता। इस तरह का काँच बनाने के लिए 82% रेत, 5% सोडा और शेष 13% बोरिक ऑक्साइड का उपयोग किया जाता है। यह काँच 1650°C पर पिघलता है। इस पर क्षार और तेज़ाब का भी विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

काँच को अधिक मज़बूत बनाने के लिए और तीखे टुकड़ों में टूटने से बचाने के लिए प्लास्टिक का उपयोग किया जाता है। काँच की दो पर्तों के बीच में एक प्लास्टिक की पतली पर्त अच्छी तरह से चिपका दी जाती है। बुलेट-प्रूफ काँच में मज़बूती और भी बढ़ाने के लिए काँच की चार पर्तों के बीच में प्लास्टिक की तीन पर्तें सैंडविच की जाती हैं (पर्त-दर-पर्त जमाई जाती हैं) - काँच, प्लास्टिक, काँच, प्लास्टिक, काँच, प्लास्टिक और फिर काँच। वाहनों के विंडशील्ड में इस्तेमाल होने वाले काँच का भी पूर्व-उपचार किया जाता है जिससे किसी दुर्घटना में काँच ऐसे टुकड़ों में टूटे कि गहरे ज़ख्म देने वाले काँच के नुकीले टुकड़े न बनें।

अगर बुलेट-प्रूफ काँच से कोई भारी चीज़ तेज़ी-से टकराती है तो सबसे पहले बाहर का काँच टूटता है परन्तु काँच बिखरता नहीं क्योंकि वह प्लास्टिक की सतह से चिपका हुआ है। बाहरी काँच की पर्त तोड़ने पर टकराई वस्तु की ज़्यादातर ऊर्जा इस्तेमाल हो जाती है। अगर वस्तु बहुत ही तेज़ी-से आए तो दूसरा काँच भी टूट जाएगा परन्तु वह भी बिखरेगा नहीं क्योंकि प्लास्टिक की दो सतहों से चिपका हुआ है।

इस तरह के काँच की चार पर्तों

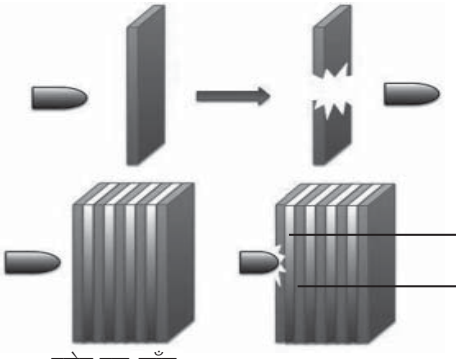

चित्र-3: *बुलेट-प्रूफ काँच में मज़बूती बढ़ाने के लिए काँच की पर्तों के बीच प्लास्टिक की पर्तें सैंडविच की जाती हैं। ऐसे काँच से जब कोई भारी चीज़ तेज़ी-से टकराती है तो पहले सबसे बाहर का काँच टूटता है परन्तु काँच बिखरता नहीं क्योंकि वह प्लास्टिक की सतह से चिपका हुआ होता है।*

को जो प्लास्टिक की तीन पर्तों से बँधी/जुड़ी हुई हों, तोड़ना काफी मुश्किल होता है। इस तरह के काँच का उपयोग सुरक्षा के लिए भी होता है क्योंकि ऐसे काँच को भेदना बन्दूक की गोली के लिए भी आसान नहीं होता। इसके अलावा, ऐसे काँच का उपयोग विशेष प्रकार की मोटरों, हवाई जहाज़, रॉकेट इत्यादि में किया जाता है। यही काँच बुलेट-फ्रूफ काँच भी कहलाता है।

आजकल ऐसा काँच भी विकसित करने की कोशिश की जा रही है जिसमें कागज़ जितनी मोटी काँच की 30-40 पर्तें होंगी और उनके बीच प्लास्टिक की पतली पर्तें। पाया गया है कि इससे काँच की मज़बूती और भी बढ़ जाती है।

यह सवाल और जवाब होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के शिक्षकों के मंच 'होशंगाबाद विज्ञान बुलेटिन' के अंक 25, जनवरी 1988 में प्रकाशित हुआ था।

— — — — — —

इस बार का सवाल: दूध फटने और दही जमने में क्या अन्तर है? शरीर में दूध बनने की प्रक्रिया क्या है? दूध खट्टा क्यों हो जाता है?

रविशंकर सोनी (टिमरनी), आर.पी. शर्मा (चांदौन) म.प्र. (1988)

आप हमें अपने जवाब sandarbh@eklavya.in पर भेज सकते हैं।

प्रकाशित जवाब देने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य को पुस्तकों का गिफ्ट वाउचर भेजा जाएगा जिससे वे पिटाराकार्ट से अपनी मनपसन्द किताबें खरीद सकते हैं।

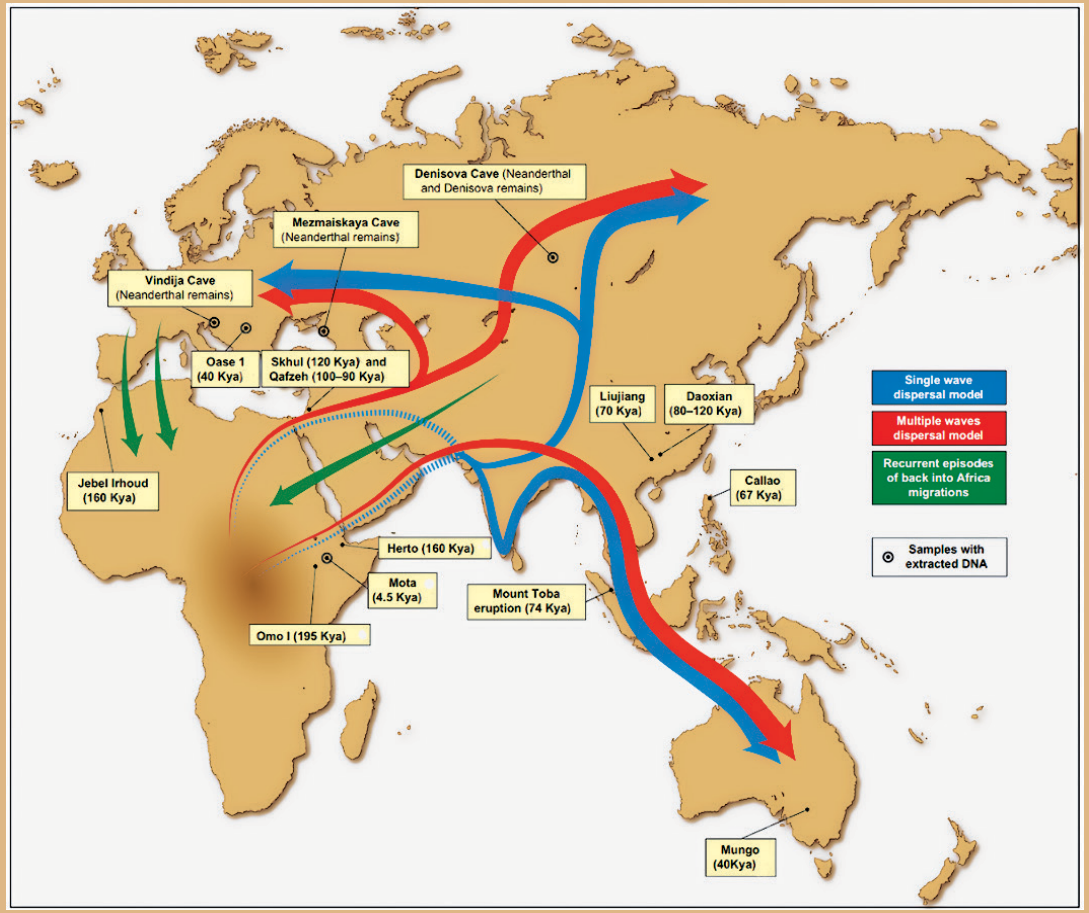
Denisova Cave (Neanderthal and Denisova remains)
Mezmaiskaya Cave (Neanderthal remains)
Vindija Cave (Neanderthal remains)
Oase 1 (40 Kya)
Skhul (120 Kya) and Qafzeh (100–90 Kya)
Liujiang (70 Kya)
Daoxian (80–120 Kya)
Jebel Irhoud (160 Kya)
Callao (67 Kya)
Herto (160 Kya)
Mota (4.5 Kya)
Omo I (195 Kya)
Mount Toba eruption (74 Kya)
Mungo (40Kya)
Single wave dispersal model
Multiple waves dispersal model
Recurrent episodes of back into Africa migrations
Samples with extracted DNA

RNI No.: MPHIN/2007/20203

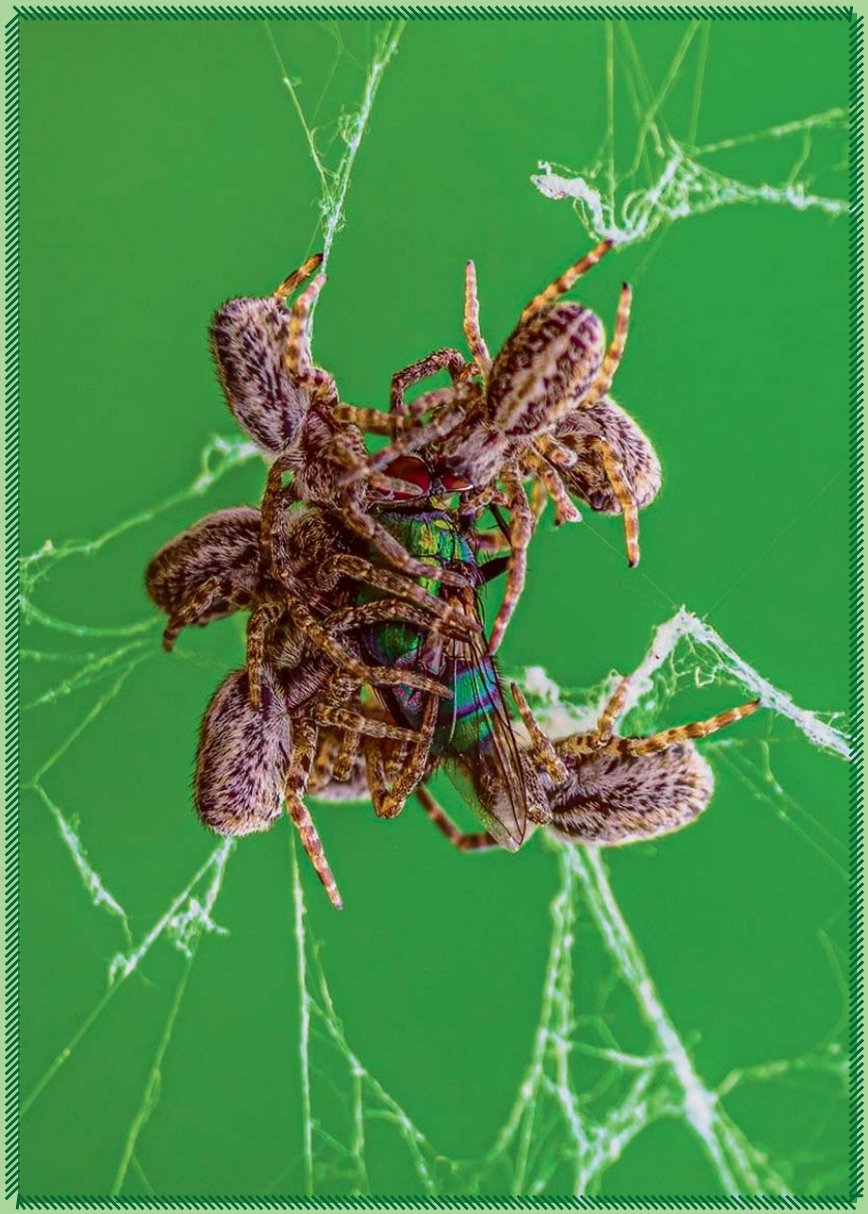

प्रकाशक, मुद्रक, राजेश खिंदरी की ओर से निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन, जमनालाल बजाज परिसर,
जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) द्वारा एकलव्य से प्रकाशित तथा
भण्डारी प्रेस, ई-3/12, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।